वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५५ अंक ३ मार्च २०१७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०१७

वर्ष ५५
अंक ३

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–

१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124

IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmraipur.org

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द का यह चित्रांकन रामकृष्ण मिशन नारायणपुर के चित्रकार श्री अजित मेनन ने किया है ।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
....	५०००/-
श्री टी.एन. जोशी, देहरादून, (उ.ख.)	१०००/-
श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, रायपुर (छ.ग.)	२०००/-
श्री प्रभुलाल बी. चौहान, भंडारा (महा.)	१०००/-

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
१२६.	श्री गिरिजा शुक्ला, पंडरिया, कवर्धा (छ.ग.)	सरस्वती शिशु मंदिर, कुकंदुररोड,पंडरिया, कबीरधाम (छ.ग.)
१२७.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	शा.कन्या महाविद्यालय दिल्ली रोड, हिसार, (हरियाणा)
१२८.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	शा. गजानंद अग्रवाल पी.जी. महाविद्यालय, भाटापारा (छ.ग.)
१२९.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	स्व.दौलतराम शा. महाविद्यालय. कसडोल, (छ.ग.)
१३०.	श्री मिलिन्द साव, राजनांदगाँव (छ.ग.)	शा. उच्च. माध्य. शाला, कन्हारपुरी, राजनांदगाँव (छ.ग.)
१३१.	श्री जितेन्द्र कुमार तिवारी, पुरानीबस्ती कोरबा (छ.ग.)	शा. उच्च. माध्य. शाला, कोसला, जांजगीर-चाँपा (छ.ग.)
१३२.	श्री महावीर प्रसाद किशन शर्मा, रायपुर (छ.ग.)	शा. के.एल.एस. महाविद्यालय, बागबहरा, महासमुँद (छ.ग.)
१३३.	श्री सुरेश कुमार अग्रवाल, मोवा, रायपुर (छ.ग.)	महावीर हिन्दी यू.पी. स्कूल, टिटिलागढ़,बलांगीर (उड़ीसा)
१३४.	श्री प्रणव कुमार अम्बोली, खारघर, नई मुंबई (महा.)	स्व.सत्यनारायण अग्रवाल शास. कॉलेज, तिल्दा-नेवरा (छ.ग.)
१३५.	श्री अजय अनिल जैस, शुक्रवारी, नागपुर (महा.)	सेन्ट्रल इंडिया पब्लिक स्कूल, कापसी (खुर्द) नागपुर (महा.)
१३६.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, पटना (बिहार)
१३७.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, पटना (बिहार)
१३८.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	मुजफ्फरपुर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मुजफ्फरपुर (बिहार)
१३९.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	भागलपुर कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, भागलपुर (बिहार)
१४०.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	नालन्दा कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, चण्डी नालान्दा
१४१.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	मोतीहारी कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, मोतीहारी ईस्ट चम्पारन
१४२.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	शा. गया इंजीनियरिंग, श्रीकृष्णा नगर, गया (बिहार)
१४३.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	दरभंगा इंजीनियरिंग कॉलेज, मब्बी दरभंगा (बिहार)
१४४.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	संजय गाँधी इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, पटना (बिहार)
१४५.	श्री रविप्रकाश गुप्ता, सहाराइस्टेट, लखनऊ (उ.प्र.)	कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग, पुसा, समस्तीपुर (बिहार)

श्रीकृष्णलहरी स्तोत्रम्

कदा वृन्दारण्ये विपुलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम् ।
अहो कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीमोहन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।

– हे मधुर मुरलीवादक श्रीकृष्ण ! मैं कब आपके उस रूप का दर्शन करते हुये दिन व्यतीत करूँगा, जिसमें आप वृन्दावन के यमुना-तट पर बलराम, सुदामा और गोप-ग्लावों के साथ विहार कर रहे होंगे ।

कदा कालिन्दीये हरिचरणमुद्रांकिततटे
स्मरन् गोपीनाथं कमलनयनं सस्मितमुखम् ।
अहो कृष्णानन्दाम्बुजवदन भक्तैकसुलभ
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।

– हे भक्तसुलभ आनन्दमुखारविन्द प्रभो श्रीकृष्ण ! मैं कब आपके चरणारविन्द-चिह्नित कालिन्दी तट पर आपके प्रसन्न मुखमंडल और नयनलोचन का स्मरण करते हुये दिवस यापन करूँगा ।

पुरखों की थाती

शुभं करोति कल्याणम् आरोग्यं धन-सम्पदाम् ।
शत्रुबुद्धि-विनाशाय दीप-ज्योतिर्नमोऽस्तु ते ।।५३९।।

– दीपक की ज्योति सबका शुभ तथा कल्याण करने वाली और स्वास्थ्य तथा धन-सम्पदा प्रदान करने वाली है । अपने मन से शत्रुबुद्धि की भावना का नाश करने हेतु मैं दीपक की ज्योति को प्रणाम करता हूँ ।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।५४०।।

– हे विष्णुपत्नी धरतीमाता, समुद्र आपका वस्त्र है, पर्वत आपके स्तन हैं, आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें । मेरे पाँवों से आपका स्पर्श होता है, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें ।

सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ।।५४१।।

– हे माता सरस्वती, आप वरदान-प्रदात्री और सभी इच्छाओं को पूरा करने वाली हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । मैं विद्या का अध्ययन आरम्भ कर रहा हूँ, आपकी कृपा से मुझे इसमें सर्वदा सफलता मिलती रहे ।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्-दुःखमाप्नुयात् ।।५४२।।

– इस संसार में सभी लोग सुखी हों, सभी लोग नीरोगी हों । सब लोग कल्याणमय चीजें ही देखें; किसी को भी दुख न भोगना पड़े ।

विविध भजन

हे रामकृष्ण शुभकारी

स्वामी रामतत्त्वानन्द

हे रामकृष्ण शुभकारी ।
संशय सकल विनाश किये तुम, जय हो संशयहारी।।
कलयुग में तुम आये ठाकुर बनके प्रेम-पुजारी ।
घर-घर जाकर दुखी जीव को, बाट्यो अमृतवारी ।।
अब तो हमरी ओर निहारो, सींचो करुणावारी ।
कल्पतरू बन छू-छू करके भक्तन काज सँवारी ।।
जगजननी को छोड़ गये थे, सींचन ममतावारी ।
आस न तोड़ो इन नैनन की, दीनबन्धु दुखहारी ।।

आए प्रभु अवध बिहारी

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

होली खेलन ससुरारी आये प्रभु अवध बिहारी ।।
प्रमुदित भये जनकपुरवासी हरषीं सरहज सारी ।
निरखि रामजू को मुख पंकज लगीं सुनावन गारी ।।
बिकी बिन मोल विचारी ।। होरी खेलन ...
एक कहें रंग नेक न घोरों मानो बात हमारी ।
इन पै न कौनहु रंग चढ़ैगो इनकी सूरत कारी ।।
सखी हिय लेह बिचारी ।। होरी खेलन ...
धनुष बान तजि कै कर कमलनि धार लई पिचकारी ।
'जन राजेश' देखि रघुवर छवि बार-बार बलिहारी ।।
धन्य प्रभु लीला तुम्हारी ।। होरी खेलन ...

मोहन बसि गयो मेरे मन में

नारायण स्वामी

मोहन बसि गयो मेरे मन में ।
लोक-लाज कुलकानि छूटि गई, याकि नेह लगन में ।।
जित देखों तितही वह दीखै, घर-बाहर आँगन में ।
अंग-अंग प्रति रोम-रोम में, छाई रह्यो तन-मन में ।।
कुंडल झलक कपोलन सोहै, बाजुबंद भुजन में ।
कंकन-कलित ललित बनमाला, नूपुर धुनि चरनन में।।
चपन नैन भृकुटी बर बाँकी, ठाढ़ो सघन लतन में ।
नारायन बिन मोल बिकी हौं याकी नैंक हसन में ।।

जा दिन हंस पिंजरा तजिहें

जा दिन हंस पिंजरा तजिहें ।
ता दिन तेरे रूप-रंग को, नाम न कोऊ भजिहें ।।
भ्राता सुत परिवार परोसी स्वास्थ सार समुझिहें ।
तत्त्व सभी आपस में मिलिहें कर्म किये संग तजिहें ।।
जब जमराज गदा फाँसी ले अपने हाथ समजिहें ।
बिनु गोपाल गोविंद को अपनो उनकी दया उपजिहें ।।

ईश्वर ही मेरे सुख के निधान

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

ईश्वर ही मेरे सुख के निधान ।
जय जय जय रामकृष्ण भगवान ।।
फैला था जग में घोर अँधियारा,
दिखता नहीं था जब कहीं उजियारा ।
प्रगट हुए प्रभु इस धराधाम,
जय जय रामकृष्ण जय भगवान !!
त्रेता में राम बने थे धनुषधारी,
द्वापर में कृष्ण बने शंख-चक्रधारी ।
कलियुग में शस्त्र था, केवल प्रणाम,
जय जय रामकृष्ण जय भगवान !!
राम के संग में सीताजी आयीं,
कृष्ण ने राधा संग रास रचायी ।
रामकृष्ण संग आईं सारदा सुनाम,
जय जय रामकृष्ण जय भगवान !!

मुक्तिदाता भगवान शिव और शिवमय श्रीरामकृष्ण

(गतांक से आगे)

दर्शक कहने लगे, 'वाह ! गदाई कितना सुन्दर लगता है ! शिवजी की भूमिका में वह ऐसा अभिनय करेगा, हमें ऐसी आशा न थी। इसे लेकर हम एक नाटक मण्डली बना लेंगे।' किन्तु श्रीरामकृष्ण वहीं खड़े रहे। उनके वक्षस्थल को प्लावित कर निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार उन्हें इधर-उधर चलते या कुछ कहते-सुनते न देखकर अधिकारी और गाँव के लोग उनके पास पहुँचे। उन लोगों ने देखा कि उनके पैर शिथिल हो गये हैं और बालक पूर्णतया अचेत हो गया है। ... किसी ने कहा जल लाकर उसके आँख-मुँह पर छींटे दो। दूसरे ने कहा, पंखा झलो। कोई कहने लगा कि शिवजी का आवेश हुआ है, नाम-कीर्तन करो।'' उस रात वे भावावेश में ही रहे। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर वे प्रकृतिस्थ हुए थे। इस प्रकार हम बाल्यावस्था से ही श्रीरामकृष्ण देव को शिवानुराग और शिवावेश में तल्लीन पाते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव द्वारा शिवमूर्ति बनाकर पूजन करना

जब श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में थे, उस समय की घटना का उल्लेख स्वामी सारदानन्द जी महाराज इस प्रकार करते हैं – ''हृदयराम कहता था कि – एक दिन मूर्ति बनाकर शिवपूजन करने की श्रीरामकृष्ण देव की इच्छा हुई थी। ... इस प्रकार की पूजन करने की इच्छा होते ही वे गंगाजी से मिट्टी लाकर उससे वृषभ, डमरू तथा त्रिशूल सहित सुन्दर शिवजी की मूर्ति अपने हाथों से बनाकर पूजा करने लगे।'' बाद में उस मूर्ति की सुन्दरता से मुग्ध होकर मथुरबाबू ने उसे माँग ली थी।

काशी विश्वनाथ और केदारनाथजी दर्शन से भावावेश

श्रीरामकृष्ण देव तीर्थ-यात्रा में वैद्यनाथ का दर्शन करते हुये वाराणसी गये। वहाँ प्रतिदिन छोटी नाव में बैठकर श्रीविश्वनाथजी के दर्शन करने जाते। वहाँ जाते ही वे भावाविष्ट हो जाते। यद्यपि अन्य देव-स्थानों में उनको भावावेश होता था, किन्तु श्रीकेदारेश्वर जी मन्दिर में वे अधिक भावाविष्ट हो जाते थे।

महिम्नस्तोत्र पाठ करते समय समाधिस्थ होना

दक्षिणेश्वर में शिवमहिम्नस्तोत्र का पाठ करते-करते उन्हें समाधि लगी थी। इस सम्बन्ध में स्वामी सारदानन्दजी महाराज द्वारा लिखित वर्णन द्रष्टव्य है – ''एक दिन शिवमन्दिर में जाकर श्रीरामकृष्ण देव 'महिम्नस्तोत्र' का पाठ कर श्रीमहादेवजी की स्तुति करने लगे। पाठ करते हुये उन्होंने जब निम्नलिखित श्लोक की आवृत्ति की, तब अपूर्व भाव से आविष्ट हो, एकदम आत्मविह्वल हो उठे –

असितगिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।३२।।

– हे शिवजी, यदि समुद्र दवात हो, हिमालय पर्वतपुंज स्याही हो, कल्पवृक्ष की शाखा लेखनी हो, समस्त पृथ्वी कागज हो और साक्षात् सरस्वती देवी अनन्तकाल तक स्वयं लिखती रहें, तो भी हे प्रभु, आपके गुण-वर्णन का पार नहीं पाया जा सकता।

''इस श्लोक का पाठ करते हुये श्रीरामकृष्ण देव अपने हृदय में शिव महिमा का ज्वलन्त अनुभव कर विह्वल हो आगे के श्लोकों की आवृत्ति करना भूलकर चिल्लाते हुये बारम्बार यही कहने लगे – 'हे महादेव! तुम्हारे गुणों का मैं कैसे वर्णन करूँ !' साथ ही उनकी आँखों की अश्रुधारा के अविच्छिन्न प्रवाह से उनका वक्षस्थल, वस्त्र और नीचे की भूमि भीग गयी ! उनकी उस क्रन्दन-ध्वनि से, पागल के सदृश गद्गद वाणी तथा अद्भुत आचरण से मन्दिर के नौकर तथा कर्मचारी चारों ओर से भागते हुये आ गए ...।''इस प्रकार श्रीरामकृष्ण शिवभाव-मग्न और भावाविष्ट दिखते हैं।

काशी में मृत्यु होने पर भगवान शिव का जीवों को मुक्त करते हुये भगवान श्रीरामकृष्ण का मणिकर्णिका में दर्शन – शास्त्र और महात्मा कहते चले आ रहे हैं कि काशी में मरने से मुक्ति मिलती है – **काश्यां मरणान्मुक्तिः।** यह भी कहा जाता है कि जीवों के मरने के बाद भगवान

शंकर तारक मन्त्र प्रदान कर उसे मुक्त कर देते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने इसका साक्षात् दर्शन किया था। इसका यथार्थ प्रामाणिक वर्णन स्वयं सारदानन्द जी अपने महान ग्रन्थ श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में करते हैं – ''काशी में और एक विशेष दर्शन की बात हमने श्रीरामकृष्ण देव के श्रीमुख से सुनी थी। वाराणसी में मणिकर्णिकादि पंचतीर्थों के दर्शनार्थ प्राय: लोग गंगाजी से नाव में जाते हैं। मथुरबाबू भी श्रीरामकृष्ण को लेकर इसी तरह वहाँ दर्शन करने गये थे। मणिकर्णिका के निकट ही काशी का प्रधान श्मशान है। मथुरबाबू की नाव जब मणिकर्णिका के घाट के सामने पहुँची, तब श्मशानभूमि चिता-धूम से व्याप्त थी। वहाँ शव-दाह हो रहा था। भावमय श्रीरामकृष्ण की दृष्टि सहसा उधर पड़ते ही वे आनन्द से उत्फुल्ल हो उठे तथा रोमांचित हो दौड़कर नाव के बाहर निकल आये एवं नाव के बिल्कुल किनारे पर खड़े होकर समाधिस्थ हो गये। यह सोचकर कि कहीं 'गंगाजी में गिर न पड़ें', मथुरबाबू के पण्डा तथा नाव के मल्लाह श्रीरामकृष्ण को पकड़ने के लिये दौड़े। किन्तु किसी को पकड़ना नहीं पड़ा, लोगों ने देखा श्रीरामकृष्ण देव शान्त-अचल-निश्चेष्ट रूप से खड़े हैं, एक अद्भुत ज्योति तथा हास्य से उनका मुखण्डल समुद्भासित हो उठा है तथा उसने मानो उस स्थल को शुद्ध ज्योतिर्मय बना दिया है। मथुरबाबू तथा श्रीरामकृष्ण के भानजे हृदयराम सावधान होकर उनके समीप खड़े रहे। मल्लाह भी दूर खड़े होकर आश्चर्यचकित दृष्टि से श्रीरामकृष्ण देव के उस अद्भुत भाव को देखने लगे। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण देव के उस दिव्य भाव के विराम होने पर सबने मणिकर्णिका में उतरकर स्नानादि किया और तत्पश्चात् पुन: नाव में बैठकर अन्यत्र प्रस्थान किया।

''तब श्रीरामकृष्ण अपने उस अद्भुत दर्शन की बात मथुरबाबू आदि से कहने लगे। उन्होंने कहा, 'मैंने देखा कि जटाजूटधारी दीर्घाकार एक श्वेतवर्ण पुरुष धीरे-धीरे श्मशान की प्रत्येक चिता के समीप आ रहे हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को यत्नपूर्वक उठाकर उसके कान में तारक-ब्रह्ममन्त्र प्रदान कर रहे हैं ! सर्वशक्तिमयी जगदम्बा भी स्वयं महाकाली रूप से जीव की दूसरी ओर उस चिता पर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार-बन्धनों को खोल दे रही हैं तथा निर्वाण के द्वार को उन्मुक्त कर अपने हाथ से उसे अखण्ड धाम में भेज रही हैं। इस तरह अनेक कल्प की तपस्यादि के द्वारा जीव को जिस अद्वैतानुभवजनित भूमानन्द की प्राप्ति होती है, विश्वनाथजी तत्काल ही उस वस्तु को प्रदान कर उसे कृतार्थ कर रहे हैं।''

मथुरबाबू को श्रीरामकृष्ण में शिव-शक्तिरूप-दर्शन

अब तक हमने श्रीरामकृष्ण को शिवभावापन्न देखा। अब हम श्रीरामकृष्ण में शिव के दर्शन की एक घटना का उल्लेख कर इस प्रसंग को विराम देंगे। स्वामी सारदानन्दजी लिखते हैं – ''सदा अपने भाव में तल्लीन श्रीरामकृष्ण देव एक दिन अपने कमरे की ईशान दिशा में पूर्व से पश्चिम की ओर विस्तृत जो लम्बा बरामदा है, वहाँ अपनी धुन में मग्न हो टहल रहे थे। काली मन्दिर तथा पंचवटी के बीच, जो एक अलग मकान है, जिसका 'बाबुओं की कोठी' कहकर अभी तक मन्दिर के कर्मचारी निर्देश करते हैं, उस मकान के एक कमरे में मथुरबाबू उस समय अकेले बैठे थे। वे जहाँ बैठे थे, वहाँ से श्रीरामकृष्ण जहाँ टहल रहे थे, वह स्थान अधिक दूर न होने के कारण वहाँ का सब कुछ अच्छी तरह से उन्हें दीखाई दे रहा था। ...मथुरबाबू अकस्मात् अत्यन्त व्यस्त होकर दौड़ते हुये श्रीरामकृष्ण के पास आये और प्रणाम करने के बाद उनके दोनों चरण पकड़कर रोने लगे। ''श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, ''तब मैंने कहा, 'यह तुम क्या कर रहे हो? तुम बाबू हो, रानी के दामाद हो, तुमको ऐसा आचरण करते देखकर लोग क्या कहेंगे? शान्त हो उठो !'... कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर उसे जो दर्शन प्राप्त हुआ था, उस वृत्तान्त को उसने विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसने कहा – 'बाबा ! आप टहलते समय जब इधर आ रहे थे, तब ऐसा दिखता कि आप नहीं हैं, वरन् साक्षात् जगदम्बा ही सामने आ रही हैं ! जब आप पीछे मुड़कर उधर जाने लगते, तब आप साक्षात् महादेव शिव दिखते थे ! पहले मुझे अपनी आँखों का भ्रम लगा। अच्छी तरह से आँखों को मींजकर फिर से जितनी बार देखा, ठीक वही दर्शन हुआ।' बारम्बार यह कहता हुआ वह रोने लगा।'' (श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, पृ.-४८०-४८१)

इस प्रकार भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन में आदिदेव भगवान शिव के प्रति विशेष श्रद्धा और भक्ति प्रकट होती है। माँ काली के उपासक श्रीरामकृष्ण में यदि शिवावेश अभिव्यक्त होता है, तो वह समीचीन और स्वाभाविक ही है। भगवान शिव का लोकमंगल स्वभाव और लोककल्याण तथा जीवोद्धार हेतु श्रीरामकृष्ण का धरा पर अवतीर्ण होना उस अनन्त अभिन्न चेतना से तादात्म्य की अभिव्यक्ति है। दोनों दो नहीं, अपितु एक हैं। देश-कालानुसार अभिव्यक्ति भिन्न है। भगवान का अभिन्न स्वरूप हम सबका मंगल करे। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(भगिनी निवेदिता को लिखे स्वामीजी के पत्र)

अत्यधिक भावुकता कार्य में बाधा पहुँचाती है; वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि – वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल – यही हमारा मूल मंत्र है।

मैं शीघ्र ही स्टर्डी को पत्र लिखूँगा। उसने तुम्हें ठीक ही कहा है कि विपत्ति पड़ने पर मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। भारत में यदि मुझे एक रोटी का टुकड़ा भी मिले, तो निश्चित जानना, वह तुम्हें पूरा-का-पूरा प्राप्त होगा। ...

(जम्मू, ३ नवम्बर, १८९७)

(उपरोक्त पत्र या पत्रांश निवेदिता के भारत आने के पूर्व लिखे गये थे।)

कर्तव्य का अन्त नहीं है; संसार अत्यन्त स्वार्थपर है।

तुम दुखी मत होना। न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति – (भला करनेवाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता)।

(अल्मोड़ा, २० मई, १८९८)

कार्य के बोझ से स्वयं को नष्ट मत कर डालना। इससे कोई लाभ नहीं; सदा याद रखना – 'कर्तव्य वह मध्याह्न का सूर्य है, जिसकी तीक्ष्ण किरणें मानवता की जीवनीशक्ति को जलाती रहती है।' साधना की दृष्टि से उसकी सामयिक आवश्यकता जरूर है, परन्तु उसके बाहर वह एक दु:स्वप्न मात्र है। संसार के कार्य यथावत् चलते रहेंगे, भले ही हम उनकी ओर सहायता का हाथ बढ़ायें या न बढ़ायें। केवल भ्रान्ति के कारण हम अपना ध्वंस कर डालते हैं। चरम नि:स्वार्थता! इसी प्रकार की एक वस्तु झूठी भावुकता का रूप लेकर प्रकट होती है; जो अन्तत: हर तरह के अन्याय के सामने सिर झुकाकर दूसरों का अनिष्ट ही करती है। अपनी नि:स्वार्थता के द्वारा दूसरों को स्वार्थी बनाने का हमें कोई अधिकार नहीं। ...

(कश्मीर, २५ अगस्त, १८९८)

ऐसा लगता है मानो तुम्हारे मन में कोई विषाद है। कोई परवाह नहीं; कुछ भी चिर काल के लिये नहीं है। जो भी हो, जीवन अनन्त नहीं है। मैं इसके लिये बड़ा ही कृतज्ञ हूँ। जगत् के सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक साहसी लोगों के भाग्य में कष्ट ही लिखा होता है; तथापि वह अनन्त भविष्य के दौरान, जब तक सब कुछ ठीक-ठीक नहीं चलता, तब तक इसी पृथ्वी पर पीड़ा के द्वारा स्वप्न को भंग कर देता है। स्वाभाविक दशा में भी मैं अपने कष्टों के दौरान आनन्द ही मनाता हूँ। इस संसार में किसी-न-किसी को दु:ख उठाना ही पड़ेगा; और मुझे खुशी है कि मैं भी उनमें से एक हूँ, जिन्हें प्रकृति के सम्मुख बलि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(रिजली, अमेरिका, १ नवम्बर, १८९९)

कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दु:ख-कष्ट भोगना ही पसन्द करते हैं। जिन लोगों के बीच मैंने जन्म लिया है, यदि उनके लिए मैं अपने हृदय को चूर्ण करके निवेदन नहीं कर देता, तो नि:सन्देह किसी अन्य के लिए मुझे वैसा करना ही पड़ता। कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है – धीरे-धीरे मैं इसे समझ रहा हूँ। यह सत्य है कि हम सभी सुख के पीछे दौड़ रहे हैं, परन्तु कुछ लोग केवल दुखी होकर ही आनन्द का अनुभव करते हैं। क्या यह बड़ा विचित्र नहीं लगता? दोनों में ही कोई हानि नहीं है; बात केवल इतनी ही है कि सुख और दु:ख दोनों ही संक्रामक हैं। इंगरसोल ने एक बार कहा था कि यदि वे ईश्वर होते, तो वे और कुछ नहीं, बस रोगों की जगह स्वास्थ्य को ही संक्रामक बनाते। ऐसा कहते समय उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि रोगों के समान ही स्वास्थ्य भी संक्रामक है। खतरा केवल यही है! मेरे व्यक्तिगत सुख-दु:ख से संसार का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है – केवल मुझे इतना ही देखना है कि वे दूसरों में संक्रमित न हों। यह एक महान् सत्य है। कोई महापुरुष ज्योंहि दूसरे मनुष्यों की हालत से

दुखी होकर गम्भीर हो जाते हैं, अपनी छाती पीटने लगते हैं और सबको बुलाकर कहते हैं, 'तुम लोग खटाई खाओ, कोयला चबाओ, शरीर पर राख मलकर गोबर के ढेर पर बैठे रहो और आँखों में आँसू भरकर करुण स्वर में बातें करो।' मैं देख रहा हूँ कि उन सबमें कमियाँ थीं – अवश्य थीं। यदि तुम सचमुच ही जगत् का बोझ अपने कन्धों पर उठाने के लिए तैयार हो, तो अवश्य उठाओ। किन्तु हमें अपना विलाप और अभिशाप मत सुनाओ। हमें अपने कष्टों से ऐसा भयभीत मत करो कि हमें ऐसा अनुभव होने लगे कि हमारे लिये स्वयं ही अपने कष्टों का बोझ ढोना कहीं अधिक अच्छा था। जो व्यक्ति सचमुच ही हमारा बोझ ग्रहण करता है, वह संसार को आशीर्वाद देता हुए अपने मार्ग पर आगे बढ़ता है। उसके मुख में निन्दा या तिरस्कार का एक भी शब्द नहीं होता; इसलिये नहीं कि जगत् में कोई बुराई ही नहीं थी, बल्कि इसलिये कि उसने स्वेच्छापूर्वक उसे अपने कन्धों पर उठा लिया है। मुक्तिदाता ही आनन्द मनाते हुए जाएगा, न कि मुक्ति पानेवाला।

आज प्रात:काल केवल यही सत्य मेरे सम्मुख प्रकट हुआ। यदि यह भाव स्थायी रूप से मेरे भीतर रहकर समग्र जीवन में व्याप्त हो जाय, तो वही यथेष्ट होगा।

हे दुखों के बोझ से जर्जरित लोगो, तुम जहाँ कहीं भी हो, चले जाओ, अपना सारा बोझ मुझे देकर अपनी इच्छानुसार चलते रहो; तुम लोग सुखी होओ और भूल जाओ कि मेरा कभी अस्तित्व भी था।

(लॉस एंजिलिस, ६ दिसम्बर, १८९९)

मुझे आशंका है कि मैं जिस विश्राम तथा शान्ति की खोज में हूँ, वह मुझे कभी नहीं मिलेगा। फिर भी महामाया मेरे द्वारा दूसरों का – और नहीं तो मेरे स्वदेश का ही कुछ कल्याण करा रही है। इस समर्पण-भाव का आश्रय लेने से अपने भाग्य के साथ समझौता करना थोड़ा सरल हो जाता है। हम सभी अपने अपने ढंग से बलिदान हो रहे हैं। महापूजन हो रहा है – यह एक महान् बलिदान है; इसके सिवा दूसरा कोई तात्पर्य नहीं दिखता। जो लोग स्वेच्छापूर्वक अपना मस्तक आगे बढ़ाने को तैयार हैं, वे बहुत-से कष्टों से बच जाते हैं; और जो प्रतिरोध करते हैं, उन्हें बलपूर्वक वशीभूत किया जाता है और उन्हें कष्ट भी अधिक भोगना पड़ता है। मैं अब स्वेच्छापूर्वक समर्पण करने के लिए तैयार हूँ।

(लॉस एंजिलिस, २४ जनवरी, १९००)

अब मैं कर्म नहीं करना चाहता। मैं शान्ति और विश्राम चाहता हूँ। उसका स्थान और काल मुझे ज्ञात है, परन्तु मेरा प्रारब्ध या कर्मफल मुझे ठेलकर निरन्तर कर्म की ओर ले जा रहा है। हम मानो पशुओं के समान हाँककर कसाईखाने की ओर ले जाये जा रहे हैं; और जैसे चाबुक के भय से चलनेवाला पशु बीच-बीच में रास्ते के किनारे उगी हुई घास से अपना मुँह भर लेता है, वैसी ही हमारी दशा भी है। परन्तु इन सबके पीछे हमारा कर्मफल या भय है। भय ही दु:ख, रोग आदि का मूल है। भय तथा आशंका के कारण ही हम दूसरों को हानि पहुँचाते हैं। चोट खाने के भय से हम और अधिक चोट करते हैं। बुराई से बचने के प्रयास में हम उसी के जाल में जा फँसते हैं।

हम अपने चारों ओर न जाने कितना कूड़ा-कचरा जमा लेते हैं। इससे हमारा कोई लाभ नहीं होता; बल्कि यह हमें उन्हीं दुखों की ओर ले जाता है, जिन्हें हम टालना चाहते हैं।

अहा, यदि एकदम निडर, साहसी और बेपरवाह बनना सम्भव होता!...

(सैन फ्रांसिस्को, ४ मार्च, १९००)

मैं पहले की अपेक्षा काफी स्वस्थ हूँ और खूब बल का अनुभव कर रहा हूँ। कभी-कभी मुझे ऐसा बोध होता है कि मेरी मुक्ति निकट है। पिछले दो वर्षों के कष्टों ने कई तरह से मुझे यथेष्ट शिक्षा प्रदान की है। कुल मिलाकर रोग तथा दुर्भाग्य का परिणाम हमारे लिए कल्याणकारी ही होता है, भले ही उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो हम हमेशा के लिये डूब रहे हैं।

मैं असीम नील आकाश हूँ, कभी-कभी बादलों से ढक जाने पर भी मैं सदा के लिए वही असीम नील ही हूँ।

मैं इस समय उस शान्ति का आस्वादन पाने के लिए प्रयत्नशील हूँ, जो मेरा तथा प्रत्येक जीव का मूल स्वभाव है। यह हाड़-मांस का ढाँचा और सुख-दु:ख के झूठे सपने – इनका अस्तित्व ही कहाँ है?

मेरे स्वप्न टूटते जा रहे हैं। ॐ तत् सत्!

(सैन फ्रांसिस्को, २५ मार्च, १९००)

(क्रमशः)
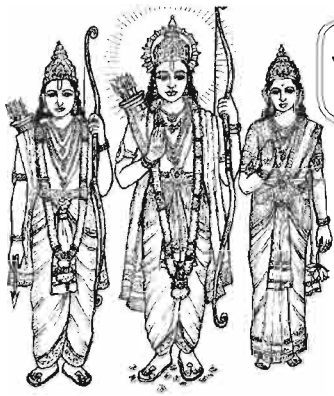
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (२/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं
करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहऊँ तेई।। ५/४१/४-८
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।५/४२

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज और अन्य समुपस्थित संतों के चरणों में मैं सादर नमन करता हूँ। यहाँ उपस्थित सभी महानुभावो और देवियो ! सबका अभिनन्दन। कल जो प्रसंग प्रारम्भ किया गया था, पिछले वर्ष श्रद्धेय स्वामीजी ने धर्म के सम्बन्ध में जो प्रश्न रखा था और धर्म की जो परिणति होनी चाहिये, वह मानो इसका संकेत है। साधना के संदर्भ से और विभीषण के चरित्र के माध्यम से हम उसका रहस्य हृदयंगम कर सकते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, जीव लंका में निवास कर रहा है, विभीषण लंका में निवास कर रहे हैं। वे रावण के छोटे भाई हैं और वहाँ रहते हुये उनकी स्थिति बड़ी विलक्षण-सी है। एक ओर वे भगवान की भक्ति की ओर प्रारम्भ से ही आकृष्ट हैं, उसके प्रति उनके अन्त:करण में महत्त्वबुद्धि है और दूसरी ओर धर्म के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति है, एक भ्रम है, जो उनके मन में गहराई से पैठा हुआ है। एक ओर वे यह मानते हैं कि जीवन का लक्ष्य भगवान की भक्ति है, तो दूसरी ओर उनके मन में धर्म की वह व्याख्या थी कि जिसमें यह कहा गया है कि बड़ा भाई तो पिता के तुल्य है, जिस तरह से पिता की सेवा करना, पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्तव्य है, धर्म है, इसी प्रकार से बड़े भाई को भी सम्मान दिया जाना चाहिये। तो इस तरह से एक ओर वे यह जानते हुए भी, यह देखते हुए भी कि रावण के द्वारा जो कुछ हो रहा है या वह रावण जो कुछ कर रहा है, वह उचित नहीं है, किन्तु रावण के प्रति उनके मन में एक ओर वही धर्म और कर्तव्य-बुद्धि है कि ये मेरे बड़े भाई हैं, पिता तुल्य हैं और उनके प्रति आदर और आज्ञाकारिता मेरा धर्म कर्तव्य है। दूसरी ओर कुछ मनोवैज्ञानिक दुर्बलताएँ भी हैं, ममता भी है और साथ-साथ धर्म को लेकर एक भ्रान्त धारणा भी है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण वे रावण के कार्यों को अनदेखा करते रहते हैं।

वस्तुत: यह केवल विभीषण का ही सत्य नहीं है, हमारे आपके जीवन का भी सत्य यही है। ठीक वही स्थिति जो विभीषण के जीवन में है, हमारे जीवन में भी है। एक ओर जिसे गोस्वामीजी प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं, वे कहते हैं 'सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग' (विनय पत्रिका) यह जो लंका दुर्ग है, यह प्रवृत्ति है, जो स्वर्णमयी है। इसका अर्थ है कि जीवन प्रवृत्ति में है। प्रलोभनों से चारों ओर से घिरा हुआ है। वह देहात्मबुद्धि से अपने आपको मुक्त नहीं कर पा रहा है। यह समस्या केवल विभीषण की नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की है, प्रत्येक जीव की है। इस समस्या का समाधान कैसे हो? बुद्धि से हम जिसे सत्य समझते हैं, पहले तो वह सत्य होना चाहिये। अगर बुद्धि में कोई भ्रान्ति उत्पन्न हो गई हो, तो उस भ्रान्ति का निवारण भी परम आवश्यक है। विभीषण की समस्या पर यदि हम दृष्टि डालें, तो समस्या यही है कि वे पूर्व जन्म में धर्मरुचि थे। उस समय प्रतापभानु राजा के कल्याण की वृत्ति उनके मन में थी। प्रतापभानु के चरित्र में जहाँ पर धर्मरुचि का वर्णन किया गया है, वहाँ पर वह

वाक्य कहा गया है –

नृप हित हेतु सिखव नित नीती।१/१५४/३

वे राजा के हित के लिये उसे निरन्तर नीति की शिक्षा देते रहते थे। इसका अभिप्राय है कि उन्होंने यह मान लिया कि मैं इनका मंत्री हूँ, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं इनका हित करूँ। भले ही प्रतापभानु में आसुरी वृत्ति आ गई हो, पर उससे मुक्त होते हुए भी वे रावण के साथ ही लंका में जन्म लेते हैं। यहाँ पर एक सूत्र बड़ा सांकेतिक है। रावण और विभीषण दोनों भाई तो हैं, पर दोनों की माताएँ अलग-अलग हैं। पिता एक ही हैं, पर माताएँ अलग अलग हैं। रावण और विभीषण दोनों के पिता तो विश्रवा मुनि हैं, पर रावण का जन्म जिस माता से होता है, उनके गर्भ से विभीषण का जन्म नहीं हुआ। पौराणिक कथाओं में यह संकेत अनेक रूपों में दुहराया गया। जैसे दैत्यों और देवताओं के युद्ध की गाथा अनादि काल से चली आ रही है, तो यह प्रश्न किया गया कि देवताओं का जन्म कैसे हुआ और दैत्यों का जन्म कैसे हुआ? वहाँ पर भी देवता और दैत्यों के पिता तो एक हैं, पर दोनों की माताएँ भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ पर भी वही, रावण और विभीषण के पिता एक हैं, पर उनकी माताएँ भिन्न-भिन्न हैं। इसका संकेत क्या है? मनुष्य अगर सोचता हो कि यह जो अच्छाई और बुराई है, सद्गुण और दुर्गुण है, ये प्रारम्भ से ही एक-दूसरे से भिन्न हैं, तो यह सत्य नहीं है। अगर इस दृष्टि से विचार करें कि सारी सृष्टि के मूल में ईश्वर है, तो वहाँ भी सूत्र वही है कि जिस ईश्वर से सारी सृष्टि का जन्म हुआ है, उसके मूल में भी जगत्पिता तो एक ही हैं। जब यह कहा गया कि देवता और दैत्यों का जन्म हुआ, तो उसके मूल में भी कश्यप एक ही हैं। निरुक्त व्युत्पत्ति में कश्यप का अर्थ किया गया है – पश्यको इति कश्यपः, जो पश्यक है, वह कश्यप है। इसका अभिप्राय यह है कि वह ईश्वर है, वह चाहे आत्मतत्त्व का द्रष्टा हो। मूल में तो एक ही वस्तु है, किन्तु एक ही ईश्वर से जन्म होने वाले सृष्टि का सृजन होने पर भी व्यक्तियों के आचरण में, स्वभाव में जो भिन्नता दिखाई पड़ती है कि कुछ लोगों की पाप में रुचि है और कुछ लोगों की सत्कर्म में रुचि है, यह कैसे हुआ? देवता और दैत्यों में भिन्नता कैसे आ गई? उसको स्पष्ट करने के लिये एक सूत्र रामचरित-मानस में और पुराणों में अनेक कथाओं के माध्यम से दिया गया। यह कहा गया कि कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ हैं – दिति और अदिति। दिति के गर्भ से दैत्यों का जन्म होता है और अदिति के गर्भ से देवताओं का जन्म होता है। अब उसे यों कह सकते हैं कि ये जो दिति और अदिति हैं, ये मानो व्यक्ति के अन्तःकरण में रहने वाली उन वृत्तियों की ओर संकेत करते हैं, जिसके लिये विभीषण ने रावण से संकेत करते हुये कहा था। उन्होंने कहा –

सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ।। ५/३९/५

एक है सुमति, इसका हम सब अपने जीवन में अनुभव कर सकते हैं। देवता और दैत्य भी तो हम लोगों के अन्दर में जन्म लेते रहते हैं। तो सीधी-सी बात यह है कि जब सुमति हमारे अन्तःकरण में उदित होती है, तो सद्गुणों का प्रादुर्भाव होता है और कुमति जब हमारे अन्तःकरण में आती है तो कुमति की प्रेरणा से हम दुर्गुणों की ओर प्रेरित होते हैं। इसी सत्य की ओर भगवान श्रीराम ने श्रीभरत को उपदेश देते हुये संकेत किया था। जब भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक हो गया, तब एक दिन प्रभु उपवन में विराजमान थे, उसी समय प्रभु से मिलने के लिये चार महात्माओं का आगमन हुआ। वे महात्मा हैं सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार। उनका वर्णन करते हुये मानस में कहा गया है –

देखत बालक बहुकालीना। ७/३१/४

वे देखने में तो, सर्वदा बालक जैसे ही दिखाई देते हैं, पर वे तो सृष्टि में जब सबसे पहले मानसी सृष्टि होती है, तब इन चार महापुरुषों का जन्म हुआ था। ये चारों महापुरुष कैसे हैं –

समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। ७/३१/५
आसा बसन ब्यसन यह तिनहहीं।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।। ७/३१/६

ये समदरसी हैं। इनमें भेदवृत्ति का सर्वदा अभाव है। ये वस्त्र धारण नहीं करते और सर्वदा नग्न रूप में विचरण करनेवाले हैं। उनके लिये रामचरितमानस में कहा गया –

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। ७/३१/५

ये चारों मुनि ऐसे लगते हैं, मानो चारों वेदों ने शरीर धारण कर लिया है। अब इस कथा का मूल संकेत कहाँ से

है? यहाँ पर उसी की ओर इंगित किया गया है। भगवान उनसे राजमहल में नहीं मिलते, भगवान उनसे मिलते हैं वाटिका में, उपवन में। उसका सांकेतिक सूत्र वहीं से होता है। यह जो श्रीराम का अवतार होता है, उस अवतार में भी भूमिका क्या है? वहाँ पर भी तो सूत्र वही है। कई कल्पों की कथाओं में एक कल्प की कथा यह है कि बैकुण्ठ में भगवान के दो पार्षद हैं, वे द्वारपाल हैं, देहरी पर खड़े रहते हैं। बड़ी सांकेतिक भाषा है, बैकुण्ठ में रहने वालों में ऐसी कुण्ठा, ऐसे दुर्गुण कैसे आ गये? यह प्रश्न हम सब लोगों के लिये भी है। हम सब ईश्वर के अंश हैं, तो हमारे अन्त:करण में कुण्ठा क्यों होनी चाहिए, दुर्गुण क्यों होने चाहिये? तब एक सांकेतिक भाषा कही गई। भई, एक घर हो, एक व्यक्ति बाहर हो और एक व्यक्ति भीतर हो। तो एक बाहर है, तो हम कहेंगे कि वह बाहर है, जो भीतर है, उसके लिये कहेंगे भीतर है। पर जो देहरी पर खड़ा है, उसके लिये क्या कहें? वह बाहर है कि भीतर है? इसका अर्थ है कि एक पग इधर हटा ले तो भीतर और इधर हटा ले तो बाहर। यह जो देहरी है, वह ठीक बिल्कुल केन्द्र में है। इसको अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया। हमारे यहाँ शास्त्रीय मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति को संध्या के समय सांसारिक काम छोड़कर गायत्री की या भगवान की उपासना या ध्यान करना चाहिये। वहाँ पर भी वही संकेत है। संध्या माने? वह संधिकाल। बैकुण्ठ में देश की दृष्टि से देहरी है। काल की दृष्टि से नित्य हमारे और आपके जीवन में एक बेला आती है, जिसे हम रात्रि कहते हैं और दूसरी बेला को दिन कहते हैं। लेकिन एक मध्य बिन्दु है, जिसको हम संध्या कहते हैं। साधारणतया जब सूर्यास्त हो रहा हो, दिन समाप्त हो रहा हो और रात्रि काल का आरम्भ हो रहा हो, तो उसे संध्या काल कहते हैं। पर शास्त्र कहते हैं कि संध्या करने की जो शास्त्रीय विधि है, उसे प्रात:काल सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों समय करना चाहिये। दोनों को संध्याकाल माना गया है। एक बड़ी अनोखी बात उसमें कही गई है कि संध्या करने का कोई फल नहीं है। पर न करना बड़ा अनर्थ है, बड़ा अकल्याणकारी है। बड़ी अद्भुत बात है। पर यह कहीं नहीं लिखा है कि संध्या करने से आपको पुण्य मिलेगा और उस पुण्य के फलस्वरूप आप जो चाहेंगे, वह इच्छा पूर्ण हो जायेगी। शास्त्रों की बड़ी अनोखी पद्धति है। अन्य स्थानों में तो बहुत-सी चीजें परोस देते हैं कि कार्तिक में स्नान कीजिए तो क्या मिलेगा, माघ में स्नान कीजिए तो क्या मिलेगा, दान दीजिए तो क्या मिलेगा। पर उन्होंने कहा कि सन्ध्या करना आपका कर्तव्य है, उसमें आप किसी फल की आशा न रखिए। सीधा सा तात्पर्य है कि जब हम और आप साँस लेते हैं, तो साँस लेकर क्या दूसरे पर कृपा करते हैं? साँस लेना स्वाभाविक है। अगर साँस लेना बन्द कर दें, तो मृत्यु अवश्यम्भावी है। आप कहें कि चौबीसों घंटे हम साँस लेते रहते हैं, कितनी बड़ी हमारी साधना है। हर समय हम साँस लेते रहते हैं, इसलिये हमें इसका कोई फल मिलना चाहिये। क्या फल मिलना चाहिये? आप तो उसी के आधार पर जीवित हैं। उसका अभिप्राय यह है कि ठीक यही स्थिति व्यक्ति के अन्त:करण की भी है। चाहे वह देश की देहरी पर खड़ा हो, चाहे वह काल की देहरी पर खड़ा हुआ हो, चाहे वह प्रकाश और अन्धकार की संधि में खड़ा हो, वहाँ उसे सजग रहना है। अगर वह प्रकाश में है, तो उतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। अन्धकार में है, तो वह विश्राम कर सकता है। लेकिन जब वह एक ऐसी स्थिति में है कि अभी सोकर उठ रहा है और दूसरी ओर उसे जाग्रत दशा में प्रवेश करना है। आपने वह विचित्र दृश्य देखा होगा कि कभी-कभी लोग बेचारे प्रात:काल उठकर ध्यान करने बैठ जाते हैं और झोंक लेने लगते हैं। इसका अभिप्राय है कि नींद अभी गई नहीं है। नींद की खुमारी बाकी है। दिन में वह खुमारी चली जाती है, पर प्रात:काल हम प्रकाश की ओर जा तो रहे हैं, लेकिन नींद की खुमारी अभी भीतर है। तो ऐसी स्थिति में मानो संकेत यह है कि यह जो अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति है, चाहे वह पाप-पुण्य के अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति हो, चाहे सद्बुद्धि और कुबुद्धि की स्थिति हो, अथवा किसी प्रकार भी, जहाँ हम मध्य में खड़े हैं, अधिकांश व्यक्तियों की स्थिति तो यही है। जब भी ऐसी स्थिति आवे, तो हमें सावधान हो जाना चाहिए। जो उस समय सावधान नहीं है, उस पर संकट आ सकता है। **(क्रमश:)**

चैतन्यदेव का जगाई-मधाई उद्धार

स्वामी रुद्रेश्वरानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि "ईश्वर मानव बनकर, अवतार होकर प्रेम-भक्ति सिखाने के लिए युग-युग में आते हैं। चैतन्यदेव को देखो न। अवतार द्वारा ही उनके प्रेम तथा भक्ति का आस्वादन किया जा सकता है।" (१.२५३)

ईश्वर के अवतार अथवा उनके द्वारा स्थापित परम्परा से ही व्यक्ति मोक्ष का मार्ग पाता है। मनुष्य कैसे अपार आनन्द का भागी हो सकता है, यह सिखाने के लिए भगवान अवतरित होते हैं। अवतार के जीवन और उनके उपदेशों के फलस्वरूप साधक सहज ही अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।

प्रत्येक अवतार में भगवान अपने पतित-पावन नाम को सार्थक करते हैं। उनका नाम पापी-तापी, सज्जन-दुर्जन, ब्राह्मण-चाण्डाल सबको समान रूप से पावन करता है। अवतार यदि केवल सज्जनों को ही ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर करें, केवल साधकों, तपस्वियों को ही धर्म-मार्ग, भगवत्पथ पर परिचालित करें, तो उससे उनके आविर्भाव का प्रयोजन पूर्ण व्यक्त नहीं होता। उनका नाम तो तभी सार्थक होगा, जब घोर पापी भी उनके पावन नाम के जप से सन्त हो जाएँ, दुर्जन भी भगवत्पथ पर अग्रसर हों।

जिस प्रकार भगवान श्रीराम की लीला में रावण का नाम और भगवान श्रीकृष्ण की लीला में कंस का नाम जुड़ा हुआ है, उसी प्रकार चैतन्यदेव की अवतारलीला में जगाई-मधाई का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। रावण और कंस का तो भगवान को वध करना पड़ा था, किन्तु चैतन्यलीला में निकृष्ट पापी जगाई-मधाई का कैसे हृदय-परिवर्तन हो गया, कैसे वे उत्कृष्ट साधक बनते हैं, इसकी अद्भुत कथा है।

नवद्वीप में जगाई-मधाई नामक दो क्रूर व्यक्ति रहते थे। उनका मूल नाम जगन्नाथ-माधव था और वे ब्राह्मण थे। वे केवल नाम के ही ब्राह्मण थे, किन्तु ऐसा कोई भी पाप नहीं था, जो उन्होंने नहीं किया था। दिनभर वे मदिरा में मत्त होकर लोगों पर अत्याचार करते थे। पूरे नवद्वीप में उन लोगों का आतंक छाया हुआ था। लोग उनके नाम से ही भयभीत हो जाते थे।

चैतन्यदेव नवद्वीप में 'हरिबोल' की ध्वनि से भगवान के नाम का प्रचार कर रहे थे। उनके अनेक शिष्य हो गए थे और उन सबकी एक कीर्तन-मंडली थी। खोल, मृदंग, करताल लेकर सभी भक्त कीर्तन करते-करते गली-सड़कों पर भगवन्नाम का प्रचार करते थे।

चैतन्यदेव ने अपने भ्रातृसखा अवधूत नित्यानन्द (निताई) और शिष्य हरिदास को गाँव-गाँव जाकर हरिनाम का प्रचार करने को कहा था। एक दिन हमेशा की तरह जगाई-मधाई मदिरा के नशे में मत्त थे और हमेशा की तरह अवधूत नित्यानन्द भगवन्नाम में मत्त, उनके पास से गुजरे। नशे में चूर, लाल आँखें किए, बेहोशी की आवाज में मधाई ने नित्यानन्द से पूछा, "कौन जा रहा है?"

नित्यानन्द ने निर्भयता से उत्तर दिया, 'अवधूत'। यह नाम सुनकर मधाई चिढ़ गया और उसने एक घड़े का टुकड़ा जोर से निताई के सिर पर मारा। निताई के सिर से रक्त की अविरल धारा बह पड़ी। निताई तो सोचकर ही आए थे कि आज किसी भी प्रकार चैतन्य महाप्रभु के द्वारा जगाई-मधाई का उद्धार करना ही है। उनके सिर से टप-टप रक्त की बूँदें गिर रही थीं और मुख से अविरल हरिनाम का उच्चारण हो रहा था। नित्यानन्द को जगाई-मधाई के ऊपर थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आया, वे नृत्य करते हुए भगवन्नाम का गान कर रहे थे। उनके इस नृत्य को देखकर मधाई और भी चिढ़ गया और वह उन पर दुबारा प्रहार करने जा ही रहा था कि जगाई ने रोक दिया।

किसी ने इस बात की खबर चैतन्यदेव को दी। वे कीर्तन-मंडली के साथ बैठे हुए थे। जैसे ही उन्होंने यह खबर सुनी, वे दौड़कर घटना-स्थल पर पहुँचे। महाप्रभु नित्यानन्द को अत्यधिक प्रेम करते थे। उनके सिर से रक्त बहते देखकर वे विह्वल हो गए। भगवान का यह स्वभाव है कि यदि कोई उनके भक्तों को हानि पहुँचाए, तो वे बिल्कुल

सहन नहीं कर सकते। अभी तक भक्तों ने चैतन्यदेव का केवल सौम्य रूप ही देखा था, किन्तु नित्यानन्द को लहु-लुहान देखकर उन्होंने रौद्र रूप धारण कर लिया।

उनके इस रौद्र भाव को देखकर भक्त ही नहीं, अपितु जगाई-मधाई भी भयभीत हो गए। उनका सारा नशा चूर हो गया। वे पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगे और चैतन्यदेव के चरणों पर लोट-पोट होने लगे। किन्तु चैतन्य महाप्रभु का हृदय उन्हें क्षमा करने को तैयार नहीं था। नित्यानन्द महाप्रभु से बार-बार कहने लगे कि यदि वे इन पापी-तापी को क्षमा नहीं करेंगे, तो कौन उन्हें क्षमा करेगा। नित्यानन्द यही चाहते थे कि महाप्रभु आज इनका उद्धार करें।

महाप्रभु भी नित्यानन्द का त्याग, तितिक्षा और क्षमाशीलता देखकर अभिभूत हो गए। उनकी प्रेमपूर्ण विनती से द्रवित होकर चैतन्यदेव ने केवल जगाई-मधाई को क्षमादान ही नहीं किया, अपितु उन पर विशेष कृपा की। चैतन्यदेव के स्पर्शमात्र से उनमें भगवद्भाव का संचार हुआ। अपने जीवन में उन्होंने जो कुकृत्य किए थे, उन पर उन्हें अत्यन्त ग्लानि होने लगी। उन्होंने अपने सभी पापकर्मों का त्याग कर दिया।

जगाई-मधाई अब पूरा दिन भगवन्नाम का जप करने लगे और विनम्र भाव से भक्तों की सेवा करने लगे। उनकी परोपकार वृत्ति तथा धर्मभाव को देखकर सबके हृदय में श्रद्धा का उदय होने लगा। जगाई-मधाई प्रतिदिन सुबह गंगातट पर जाकर घाट को धोते-पोंछते, ताकि वहाँ के लोग अच्छी तरह स्नान एवं सन्ध्या-वन्दन कर सकें। नवद्वीप में आज भी मधाई-घाट देखने को मिलता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं,

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।९.३०।।

'यदि कोई अति दुराचारी भी अनन्यभाव से भक्तिपूर्वक मेरा भजन करता है, तो वह साधु के समान ही है, क्योंकि उसने भलीभाँति निश्चय किया है कि ईश्वर की आराधना ही एकमात्र करणीय वस्तु है।' भगवान की यह अमोघ वाणी यदि वे स्वयं ही अपनी अवतार-लीला में सार्थक नहीं करते हैं, तो कौन उस पर विश्वास करेगा। सचमुच चैतन्यलीला में जगाई-मधाई उद्धार पापी-तापी को भी यह आश्वासन देता है कि भगवान अहैतुक कृपासिन्धु होकर उनको दुस्तर भवसागर से पार करते हैं। OOO

सब मन का ही खेल है

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, वृन्दावन

नारायण! नारायण! नारायण! एक रोगी बिस्तर में पड़ा पीड़ा से कराह रहा था। हाय! हाय! अब जीकर क्या करेंगे? अब हम मरने को राजी हैं। इतने में घर में आग लग गयी। वह रोगी अपना सारा रोग भूल गया। उठकर खड़ा हो गया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। पानी लेकर घर में डालने लगा। जब उसे लगा कि अब जल जाऊँगा, तो बड़ी तेजी से भाग गया। अब बताओ उसकी शारीरिक पीड़ा कहाँ गयी? जब तक मन पीड़ा में था, तब उसे पीड़ा मालूम पड़ती थी। जब मन पीड़ा में से निकलकर दूसरी ओर चला गया, तब वह लुप्त हो गयी। यह सब मन का खेल है।

ये जो बिना कपड़े के नंगे लोग हैं, जो गंगा के किनारे धरती पर सोते रहते हैं, वे कहते हैं कि – हमारे सामने ये राज-रईस क्या हैं? – यह मन की मस्ती है। मन के हारे हार, मन के जीते जीत।

उपवास करने में और भूखे रहने में क्या भेद है? चीज तो एक ही है। फिर दोनों में क्या भेद है? उपवास करने में सुख होता है और भूखे रहने में दुख होता है। सुख-दुख का भेद है। ये सब मन से ही है।

श्रीनाथजी का दर्शन करने जाओ और कोई कोड़े से मार भगावे, तो बोलते हैं, श्रीनाथजी की बहुत कृपा है। यदि कोई ऐसे कोड़ा दिखा दे, तो बोलते हैं, अरे! बहुत अपमान हुआ । चीज तो एक ही है, कृपानुभव और अपमानानुभव का भेद है। इसी का नाम मानस है।

यदि कोई आपके शरीर में जरा सा काँटा चुभा दे, तो आप उसे मारने को तैयार हो जाते हैं। डाक्टर आपके शरीर के अंग काटकर फेंक देता है, हाथ-पाँव काटकर फेंक देता है, फिर भी आप बोलते हैं, हमारी भलाई के लिये कर रहा है। कहाँ सुख है? कहाँ दुख है? यह सुख-दुख सब मन से है।

एक आदमी के घर में आग लगी। उसने कहा, महाराज! हमने तो इस घर को बेच दिया है। इसके रुपये हमारे पास आ गये हैं। अब यह मेरा घर नहीं जल रहा है। अब यह दूसरे का घर जल रहा है। इसका क्या अर्थ है? जब तक अपना है, तब तकलीफ है, जब अपना नहीं है, तब कोई दुख नहीं है। यानि सारा दुख मन का है। राम! राम!

OOO

सच्ची भक्ति की अद्भुत शक्ति

स्वामी परमानन्द

स्वामी परमानन्द

(स्वामी परमानन्दजी स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। अमेरिका में अनेक वर्ष रहकर उन्होंने वेदान्त का प्रचार किया। प्रस्तुत लेख एक आध्यात्मिक जिज्ञासु को लिखे उनके उपदेशों का अंश है।)

धन्य हैं वे जिनके हृदय में भक्ति है। इस संसार में यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब मिथ्या है। पवित्र और निर्मल जीवन जीयो। साहसी और निर्भय बनो। यदि हजारों लोगों को भी तुम असफल होते देखो, तो भी दृढ़ता से खड़े हो जाओ और हार मत मानो। सचमुच, जीवन में प्रेम और भक्ति का होना कितनी महान बात है ! भक्ति ही व्यक्ति को सुखी कर सकती है।

सच्ची भक्ति की अद्भुत शक्ति है। इसके प्रभाव से भक्त पाषाण में भी देवत्व का जागरण कर सकता है। यह एक जीवन्त शक्ति है, जो मृतप्राय व्यक्ति में भी जीवन का संचार कर देती है। सचमुच में वे लोग धन्य हैं, जिनमें स्वाभावत: ईश्वर के प्रति भक्ति है। तुम जानते हो, श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है कि विचार-बुद्धि से नहीं, किन्तु श्रद्धा और भक्ति की शक्ति से परम लक्ष्य को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

सच्ची भक्ति से ही हमें ईश्वर-दर्शन होता है। केवल बुद्धि से, यौगिक क्रियाओं से, विभिन्न चेष्टाओं से कोई ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। यह ईश्वर की वाणी है। उसे विशुद्ध और निर्मल प्रेम, स्वार्थ-रहित और एकाग्र प्रेम से प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर स्वतन्त्र हैं, वे किसी नियमों से बँधे नहीं हैं, फिर भी वे कहते हैं, 'मैं अपने भक्तों के अधीन हूँ।' भगवान ईसा ने कहा है, 'ईश्वर प्रेमस्वरूप हैं और प्रेम ही ईश्वर है।' किन्तु इसका अनुभव होना बहुत कठिन है। केवल पवित्र और सच्चे हृदय वाले ही इसे अनुभव कर सकते हैं। जब तक हमारे भीतर स्वार्थ का लेशमात्र भी है, हम इसका अनुभव नहीं कर सकते। यह पवित्र और दिव्य वस्तु है।

जब हृदय में इस प्रकार का प्रेम उदय होता है, तब व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। किन्तु कठिन प्रतीत होने के बावजूद भी हमें इस आशा का त्याग नहीं करना चाहिए। सांसारिक दृष्टि से यह कितना भी दुष्कर क्यों न हो, इसका अनुभव किया जा सकता है। प्रेम के बिना व्यक्ति का हृदय बंजर भूमि मात्र है। सच्चे और निष्ठावान भक्त के लिए तो इसकी प्राप्ति बिल्कुल भी कठिन नहीं है, क्योंकि उसका हृदय प्रेम से पूर्ण है और ईश्वर के प्रति सहज ही आकर्षित होता है।

भगवान के प्रति दृढ़ श्रद्धा रखो, तब तुम सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगे। वे तुम पर कृपा करेंगे और सारे विघ्नों से तुम्हारी रक्षा करेंगे। सर्वदा ईश्वर में मन लगाए रखो और बालक के समान सरलता से प्रार्थना करो। अन्य किसी भी वस्तु का चिन्तन मत करो। कभी भी निराश अथवा उदास मत होओ, सदैव प्रसन्नचित्त रहो। तब ईश्वर की कृपा से तुम आनन्द और शान्ति में रह सकोगे।

यदि तुम एक सच्चे भक्त बनना चाहते हो, तो तुम्हारा मन सांसारिक विचारों से परे होना चाहिए। संसार की किसी भी परिस्थिति से तुम्हारी शान्ति विचलित नहीं होनी चाहिए। पवित्र, निर्मल, निस्स्वार्थ, उदार और प्रेमपूर्ण बनो। स्वयं को कभी महान मत बताओ, किन्तु अपने को सर्वोच्च ईश्वर का एक विनम्र सेवक समझो और निर्भय होकर सेवा के लिए सदैव तत्पर रहो। स्मरण रहे कि सदाचार का जीवन जीते हुए और ईश्वर का चिन्तन करते हुए यदि असामयिक और भीषण मृत्यु भी आ जाए, तो वह धन्य है। इसके विपरीत सुख-समृद्धि में भी जीवन जीने से तुम अपने इष्टदेव से दूर हो जाओगे, जो एक महा-अभिशाप स्वरूप है। सदैव सतर्क रहो और कभी भी क्षणिक दुर्बलता के वश मत होओ। साहस और निडरता से कार्य करो और कभी भी अधीर मत बनो।

बाह्य वस्तुओं पर अधिक निर्भर मत रहो, क्योंकि बाह्य अभिव्यक्तियाँ कभी भी हृदय की आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकतीं। अल्पभाषी होओ। सुन्दर वाणी अथवा शब्दों से नहीं किन्तु चरित्र से ही ज्ञान-प्रकाश का उदय होता है। महान ऋषियों ने सरल भाषा में उपदेश दिए थे, किन्तु उनके उपदेश साहस, आशा, जीवन और प्रकाश से परिपूर्ण थे। तुम्हारी भक्ति का पौधा तुम्हारे हृदय में गुप्त भाव से बढ़े। उस पौधे को अपने निष्कपट प्रेमाश्रुओं से सिंचन करो। फल की आशा मत करो, केवल सम्पूर्ण हृदय से उसकी सेवा करते रहो।

सच्चे भक्त की चेष्टाएँ केवल अपने इष्टदेव के लिए ही रहती हैं, अन्य किसी भी वस्तु के लिए नहीं। उसके सब कार्य – भोजन करना, चलना, सोना इत्यादि ईश्वर के प्रति आराधना हो जाते हैं। वह अपने शरीर इत्यादि सब कुछ को इष्टदेव का मानता है। इसलिए शरीर को अपना न मानते हुए, इष्टदेव का मानकर वह उसका भरण-पोषण करता है। यदि शरीर को भूख लग रही है, कष्ट हो रहा है, ठण्डी-गरमी लग रही है, तो भक्त सोचता है कि उसके इष्टदेव को ही दुख हो रहा है। इसलिए भक्त केवल अपने इष्टदेव के प्रीत्यर्थ ही शरीर की सब प्रकार से देखभाल करता है,।

भक्त अपने शरीर को मन्दिर के रूप में भी देख सकता है, जिसमें उसके इष्टदेव का वास है। वह जो कुछ भी शरीर के लिए करता है, वह इष्टदेव के प्रति अर्पण होता है। इसलिए वह सावधान रहता है कि पवित्र और सुयोग्य वस्तु ही अपने हृदयस्थ देवता को अर्पित की जाए। अपने हृदयस्थ इष्टदेव के प्रति यह निरन्तर विचार उसे सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त करता है।

इस सच्ची भक्ति के द्वारा तुम उस अवस्था में पहुँच जाओगे, जहाँ तुम जीवन के प्रत्येक क्षण अपने इष्ट के सान्निध्य में रहोगे। तब इष्टदेव के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाएगा। जब तुम केवल उनमें स्थित हो जाओगे, तब सारे दुखों का अन्त हो जाएगा। तुम्हारा हृदय पूर्ण रूप से इष्टदेव के चरणों में अनुरक्त होगा और तुम उनमें समाहित हो जाओगे। यह कृतकृत्यता की अवस्था है, क्योंकि इसके द्वारा तुम अपने जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात ईश्वर-प्राप्ति को प्राप्त करोगे।

प्रेम के द्वारा ही हम अपने भीतर देवत्व का अनुभव करते हैं। प्रेम व्यक्ति को ईश्वर से जोड़ता है। जब इष्टदेव के प्रति सम्पूर्ण हृदय से विशुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है, तब बाढ़ के सदृश वह अज्ञान, संकीर्णता, भय, संशय, स्वार्थ सबको बहाकर नष्ट कर देता है। तब क्या शेष रह जाता है? केवल हमारे इष्टदेव रह जाते हैं। केवल इष्टदेव ही हृदय में प्रकाशित होते हैं। तब संसार की सभी वस्तुओं का त्याग सहज हो जाता है, क्योंकि इष्टदेव के अलावा हमारे लिए अन्य किसी भी वस्तु का मूल्य नहीं है। वे नित्य, सनातन, निर्विकार हैं, अन्य सब वस्तुएँ क्षणभंगुर और परिवर्तनशील हैं। वे दिव्य आत्मस्वरूप हैं, अन्य सभी वस्तुएँ नाशवान हैं।

इष्टदेव के प्रति प्रेम होने से सांसारिक वस्तुओं का त्याग सहज हो जाता है। अपने स्वर्गस्थ पिता के प्रति प्रेम होने के कारण ही ईसामसीह शैतान के प्रलोभन और समस्त सांसारिक विभूतियों का त्याग कर सके थे। यदि हमें इष्टदेव के प्रति पूर्ण रूप से भक्ति है, तो इस जगत की कोई भी वस्तु हमें प्रलोभित नहीं कर सकती और हमारे लिए त्याग सहज हो जाता है । यह बात हमें ईसा के 'भार उठाने' के उपदेश में प्राप्त होती है। इसका अर्थ है कि हम ईश्वर के प्रति समर्पित हों और सतत उनका ही चिन्तन करें। इससे हम पवित्र होते हैं, क्योंकि जब भी हम पवित्र व्यक्ति का चिन्तन करते हैं, हमारे मन की सब मलिनताएँ सहज ही दूर हो जाती हैं। जब हम ईश्वर के चरणों में शरण लेते हैं और उन पर अपना भार दे देते हैं, तभी हम उनसे प्रेम करते हैं। हम पूरी तरह से उनके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं और संसार की चिन्ता नहीं करते। तब हमारा भार पूरी तरह से हल्का हो जाता है। यही यर्थाथ त्याग है और यही यथार्थ मुक्ति है।

जब भक्त में सच्ची भक्ति का उदय होता है, वह विनम्र और प्रेममय हो जाता है। इष्टदेव ही उसके लिए सर्वस्व हो जाते हैं, उसका स्वयं का अस्तित्व नहीं रहता। सब जगह वह अपने प्रभु को ही देखता है, इसलिए वह सबका सेवक बन जाता है और प्रत्येक जीव में स्थित अपने प्रभु की सेवा करता है। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीय: सदा हरि:', अर्थात स्वयों को तृण से भी छोटा समझते हुए, वृक्ष जैसे सहिष्णु रहते हुए, कोई अभिमान न करते हुए और दूसरों का सम्मान करते हुए सदा हरि भजन करना चाहिए। ...

वृक्ष अपने स्वभाव का अनुसरण करता है, चाहे हम उसके साथ कैसा भी वर्ताव करें। यदि हम उसकी शाखाएँ काट भी दें, तो भी वह बढ़कर हमें छाया प्रदान करता है। इसी प्रकार सच्चा भक्त अपने इष्टदेव की पूजा करता है, उनसे कुछ चाहने के लिए नहीं, बल्कि केवल प्रेम के लिए वह प्रेम करता है, क्योंकि इष्टदेव उसके प्रिय हैं।

जब तक हमारे मन में किसी वस्तु की अपेक्षा रहेगी,

तब तक हम यथार्थ रूप से इष्टदेव से प्रेम नहीं कर सकेंगे और वे हमसे दूर रहेंगे। जब हम इष्टदेव से प्रेम के लिए प्रेम करते हैं, तभी हमारे में सच्ची भक्ति का उदय होता है। तभी हम शान्ति और धैर्यपूर्वक इष्टदेव की सेवा करते हैं। जो व्यक्ति केवल अपना बखान करता है, वह सच्चा भक्त अथवा सच्चा कर्मयोगी नहीं है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

सच्चा सेवक शान्तिपूर्वक कार्य करता है और शान्ति से चला जाता है । जो लोग अपना जीवन मानवता के लिये सच्चाई से समर्पित करते हैं, वे प्राय: लोक प्रसिद्ध नहीं होते ।

जहाँ तुम्हारे कार्यों के कोई प्रशंसक नहीं हैं, यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति उत्साहित करनेवाला नहीं है, जहाँ सभी लोग घृणा करते हैं, वहाँ अनन्त धैर्य, शाश्वत सन्तुष्टि और पूर्ण निर्भयता विद्यमान रहती है ।

जब हमारे समक्ष महान कार्य आता है, जहाँ हमारे हजारों प्रशंसक होते हैं, वहाँ क्षुद्र, कायर, स्वार्थी भी अपनी महानता प्रदर्शित करने के लिये अपना बलिदान दे देता है ।

लेकिन जो बिना किसी प्रदर्शन के, चुपचाप छोटा कार्य कर सकता है, वही महान, नि:स्वार्थी और मानवता का सच्चा प्रेमी है ।

इष्टदेव से तुम्हारा अत्यन्त घनिष्ठता हो, ऐसा सम्बन्ध स्थापित करो। अपने स्वभाव से विपरीत उपासना करने से भक्ति का पथ कठिन हो जाता है और उसमें प्राय: असफलता मिलती है। क्या इष्टदेव तुम्हें स्नेहमय पिता के रूप में प्रतीत होते हैं? तो उन्हें अपने लौकिक पिता से भी अनन्त गुना अधिक वास्तविक पिता मानो। उन्हीं का आश्रय और शरण लो। यदि इष्टदेव तुम्हें स्नेहमयी माँ के समान प्रतीत होते हैं, तो तुम उनसे और अधिक निकटता का अनुभव कर सकते हो, क्योंकि ईश्वर को माँ के रूप में मानने से जिस निकटता का अनुभव होता है, वैसा अन्य किसी भी सम्बन्ध से नहीं होता। पिता के साथ कभी भय हो सकता है, किन्तु बालक माँ के पास निस्संकोच जा सकता है। यदि उससे कुछ गलती भी हुई हो, तो वह जानता है कि माँ उसे दण्ड नहीं देगी, किन्तु सदैव उसे प्रेम, क्षमा और उसकी रक्षा करेगी। इष्टदेव को बालगोपाल अथवा बाल येशु के रूप में, पुत्र समझकर भी उनकी सेवा की जा सकती है। भारत में अनेक लोग इस प्रकार इष्टदेव की सेवा करते हैं और कदाचित् यह तुम्हारे लिए अधिक अनुकूल हो। इससे अधिक पवित्र और उन्नत करने वाला अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि माँ का सच्चा और निस्स्वार्थ प्रेम बहुत अधिक गहन होता है। तुम जितना उस प्रेम-सागर में निमज्जन करोगे, उतना अधिक तुम्हारा ज्ञान उन्नत होगा। एक सच्ची माँ के समान अपने दिव्य शिशु की सेवा-शुश्रूषा करो। तब तुम्हारा कुछ भी अमंगल नहीं होगा। ईश्वर को अपने पुत्र के रूप में देखो। श्रीकृष्ण की माता देवकी की तरह बनो। माता देवकी अपने पुत्र की प्रतिष्ठा और शक्ति को नहीं देखती थीं। वे ईश्वर को केवल अपने पुत्र के रूप में देखती थीं, जो सहायता और आश्रय के लिए हमेशा उनके पास जाता था।

जब इनमें से किसी भी भावों में सच्ची भक्ति उत्पन्न होती है, तब वह सम्बन्ध इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि इष्टदेव के प्रति प्रेम और सेवा सहज हो जाती है । किन्तु सगुण ईश्वर की सेवा किए बिना भी यथार्थ भक्ति हो सकती है। यदि तुम निष्ठापूर्वक उत्साह से अपने भीतर सत्य की खोज करते हो, तो तुम भी सच्चे भक्त हो। अपने इष्टदेव के प्रति शुद्ध प्रेम रखो, चाहे किस भी नाम से उन्हें पुकारो। श्रद्धा, प्रेम और स्वार्थ-रहित होकर उनकी सेवा करो और तुम्हें अवश्य शुद्ध भक्ति प्राप्त होगी। ○○○

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर

२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक

३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द

५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द

राष्ट्रीयता - भारतीय

पता - रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी आत्मस्थानन्द, स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी मुमुक्षानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी अभिरामानन्द और स्वामी मुक्तिदानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सारगाछी की स्मृतियाँ (५३)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२१-११-१९६०

महाराज – सर्वप्रथम शरत महाराज को 'मायेर बाड़ी' (उद्बोधन में श्रीमाँ का निवास-भवन) में देखा था, वे अपने सामने छोटी मेज लेकर बैठे थे। तब देखकर यही सोचा था कि कोई नायब-साहब होंगे।

पुराने मठ के प्रांगण में एक दिन एक विधवा को देखा था। एक व्यक्ति ने बताया कि वे योगीन महाराज की पत्नी थीं। कैसी देवी मूर्ति ! मठ द्वारा उनको कुछ मदद दी जाती थी।

शुद्धानन्द महाराज से एक बार मैंने पूछा कि आप लोग सब कुछ देख-समझकर साधु क्यों नहीं बनाते हैं? वे बोले "देखो, देख-समझकर लेने पर मैं इस संघ में जगह नहीं पा सकता था।" उनका उत्तर सुनकर सिर चकरा गया, मैं किसके साथ मजाक करने गया था।

याद आ रहा है, एक दिन खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) सोए हुए थे, तब मैंने धीरे-धीरे उनका शरीर दबाकर सेवा की थी। एक बार उन्हें गाना सुना रहा था। वहाँ रामलाल दादा और शाक चुन्नी मास्टर (पोथीकार अक्षय कुमार सेन) थे। वे लोग मेरा गाना सुनकर बोले, "होगा क्यों नहीं? सिलहट का मीठा-मीठा संतरा खाया है – कंठ से मधुर गाना ही तो निकेलगा।"

एक दिन मठ में पाठ हो रहा था – महेन्द्रनाथ दत्त की कोई पुस्तक थी। किसी एक विशेष स्थान के सम्बन्ध में पूछने पर महापुरुष महाराज ने कहा, 'अरे ! महिन्दर की बात !"

राजा महाराज की बात तो पुस्तक से ही बाहर हो गई है। मैं उन्हें प्रणाम करने गिरीश बाबू के घर गया था। उन्होंने पूछा, "क्या कुछ आध्यात्मिक मार्गदर्शन मिला है?" एक दिन बागबाजार में किसी के घर के सामने रास्ते में मैंने गिरीश बाबू को एक छोटा वस्त्र पहने देखा था। तब मैं मोक्षदाबाबू के साथ कोलकाता में एक मकान में रहता था।

याद आ रहा है, मठ के अतिथि-कक्ष में एक दिन महाराज, बाबूराम महाराज तथा अन्य कुछ लोग एक साथ बैठे थे। तब मैंने गाना गाया था।

मास्टर महाशय के पास सर्वप्रथम मैंने 'शतकोटि शशी हासे मायेर चरण नख रे' नामक भजन गाया था। भजन के अन्त में बिल्कुल भावविभोर हो गया था। आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। उस समय मैं कैसा था ! सारे दिन बाउल साधकों की तरह जप करता था। मास्टर महाशय ने सिलहट के दुर्गेश बाबू से कहा था, ठाकुर के बाद ऐसा भाव-विह्वल भजन उन्होंने दूसरा नहीं सुना।

हम लोग भोजन के समय 'ब्रह्मार्पणम्' मंत्रपाठ करते हैं। इसका अर्थ बहुत उच्च भाव का है। इसकी तुलना करने से 'अहं वैश्वानरो भूत्वा' श्लोक सहज ही समझा जा सकता है। इसीलिए मैं 'ब्रह्मार्पणम्' श्लोक के साथ 'अहं वैश्वानरो भूत्वा' मंत्र का भी उच्चारण करता हूँ।

हाय ! यदि हम लोग तैयार रहते तो आज क्या हो गया होता। श्रीरामकृष्ण पहले से ही अतीव सुपाच्य आध्यात्मिक आहार दे गए हैं – यदि हम लोग तैयार रहते तो सभी त्रैलंग स्वामी हो सकते थे। स्वयं भगवती ने अपने मुख से मुझे मंत्र प्रदान किया, तभी मुक्ति का बोध हो जाना था।

गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द) को मैंने देखा था। ज्ञान महाराज के कक्ष से निकलकर पचास वर्ष से अधिक आयु के वयोज्येष्ठ श्वेत केशों वाले एक साधु गंगा के तट पर तेज गति से चल रहे थे। मैंने सोचा कि बंगालियों में ऐसा शरीर नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने आकर मेरा नाम पूछा। नाम बताते ही बोले, "जानता हूँ, अच्छी तरह जानता हूँ।" भजन की बात चली।

माँ ने रासबिहारी महाराज से एक कीड़े को मार देने को कहा था। वह प्रकाश के किनारे-किनारे घूम रहा था। माँ ने कहा, उसे मारकर फेंक दो। उनका वैसा ही जीवन है।'' माँ कहती थीं, ''पुरुष के अलावा कोई संन्यासी नहीं हो सकता, महिलाओं का संन्यास नहीं होता। जो संन्यासिनी बनी हैं, समझना होगा कि उनकी पुरुष सत्ता है।'' जयरामबाटी में मैंने पुष्पों के पौधे लगाए थे। माँ ने कहा, ''ये सब देखकर मुझे बच्चों की बातें याद आयेंगी।''

२३-११-१९६०

महाराज – चाहे जितना भी ध्यान, जप, स्मरण-मनन करो, किन्तु दिन में एक बार भी मन को वृत्तिशून्यभाव से चिन्तन न करने से काम-क्रोध के हाथों से मुक्त होना सम्भव नहीं है। शरत महाराज अत्यन्त विशुद्ध थे। रंचमात्र भी कलुषता नहीं थी। कैसा अद्‌भुत व्यवहार था ! वे प्राय: कहते थे, "First be a gentleman and then be a sadhu" – साधु बनने के पहले सज्जन बनो । जो भी साधु होना चाहता है, उसकी कुछ बातें देखी जाती हैं – १. मुखाकृति २. पढ़ाई-लिखाई ३. चाल-चलन ४. माता-पिता ५. परिवेश। अर्थात् कैसे परिवेश में पला-बढ़ा है।

२५-११-१९६०

महाराज – भगवान मानो एक समष्टि देह हैं – सभी जीव मानो उनकी एक-एक कोशिकायें हैं। प्रत्येक कोशिका को ही तो 'अस्ति जायते नश्यति' अवस्था से गुजरना पड़ता है। **(क्रमशः)**

वेदान्त पाप स्वीकार नहीं करता, भ्रम स्वीकार करता है । वेदान्त कहता है कि सबसे बड़ा भ्रम है – अपने को दुर्बल, पापी, हतभाग्य कहना – यह कहना कि मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है, मैं यह नहीं कर सकता, मैं वह नहीं कर सकता, आदि, आदि ।

– स्वामी विवेकानन्द

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

१२	चैतन्य महाप्रभु, होली
१५	छत्रपति शिवाजी जयन्ती
१६	स्वामी योगानन्द

काव्य सरिता

कैसे आऊँ द्वार तिहारे

तारा दत्त जोशी, नैनीताल

प्रभु कैसे आऊँ द्वार तिहारे राह खड़े हैं दुर्गुण सारे
परनिन्दा में रसना रच गयी, नैनों में मेरे माया बस गयी,
जप-तप केवल मेरा-मेरा, दया-धरम ने है मुँह फेरा।
कालनैमि सी भगति हमारी, दुर्गुण की है सेना भारी ।
देह ये मेरी लंका नगरी, लोभ मोह से भरी है सगरी ।
राग-द्वेष की ये लंका, छल–कपट का बजता डंका,
तृष्णा सूपनखा बन बैठी, लज्जा शील विनय सब रूठी ।
मेघनाद बन मान खड़ा है, कुंभकरन बन ज्ञान पड़ा है,
काम, क्रोध, मद लंकापति है, देही विभीषण की दुर्गति है ।
कैसे आऊँ द्वार तिहारे राह खड़े हैं ...
प्रभु नाम ही एक सहारा, चारों ओर भव जलधि अपारा ।
कैसे आऊँ जलधि के पारा, दर्शन दो ! प्रभु पवनकुमारा।
संकट मोचन नाम तिहारो, देह लंक में नाथ पधारो ।
दुर्गुण हर प्रभु सद्‌गुण वारो, प्राणनाथ मेरी राह सँवारो।

हे दारुकावन के पावन शिव

मोहनसिंह मनराल, अलमोड़ा

हे दारुकावन के पावन शिव, हे दुखदैन्य नसावन शिव।
हे जटा गंग-तटवासी शिव, हे अविचल अविनाशी शिव।
हे सशक्ति लिंग निवासी शिव, हे बालरूप संन्यासी शिव।
हे त्रिनेत्र त्रिशूलधारी शिव, हे दुष्ट कामसंहारी शिव।
हे ज्ञान-विराग विलासी शिव, हे आनंद-सुखराशि शिव।
हे कृपादृष्टि बरसावन शिव, हे दारुकावन के पावन शिव।

मर्यादा-लंघन

पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव

सम्पति हो या हो सम्पाती,
मर्यादा जिसने भी लाँघी, उसका पतन हुआ ।
कीरी से कुंजर तक, सब हैं प्रभु के खेल-खिलौने,
हिलमिल कर रहै रहना सबकी, मीनारी हो या हो बौने ।
सूरज-पानी धरती सबकी, वैसे ही है रोटी सबकी,
इसे भूल कुछ भौतिकवादी त्याग रहे मर्यादा घर की ।
ग्रन्थ सत्य हैं सभी साक्षी, मर्यादा के उल्लंघन पर,
लंकराज का हनन हुआ ।

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१५)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न - महाराज ! साधु-जीवन में स्वाध्याय के सम्बन्ध में चर्चा हो रही थी।

महाराज - हाँ, एकबार काशी में जाकर पढ़ने की हमारी इच्छा हुई। तब मैं बेलूड़ मठ में रहता था। महापुरुष महाराज मठ में नहीं थे। शरत महाराज थे। उनसे अपने मन की बात कही। महाराज ने कहा – तुम मठ में हो, महापुरुष महाराज से कहो। महापुरुष महाराज को पत्र लिखा। उन्होंने प्रत्युत्तर में लिखा – कुछ व्याकरण की सब्जी बनाना तो हमलोगों का लक्ष्य नहीं है। यदि वेदान्त पढ़ना चाहते हो, तो मठ में पंडितजी से पढ़ सकते हो। बस, फिर काशी में जाकर पढ़ना नहीं हुआ, पंडिताई नहीं हुई। उन्होंने बचा दिया था। नहीं तो पाण्डित्य ही होता, और कुछ नहीं होता। वास्तविक बात है – विद्वान होने के लिए उच्च आकांक्षा की आवश्यकता होती है। हम लोगों की अर्थात् साधुओं की उच्च आकांक्षा नहीं रहेगी। इसीलिये विद्वान नहीं बन सकते। जिसमें जितनी उच्च आकांक्षा है, उतना ही साधुत्व कम हो जाता है।

प्रश्न – महाराज, पढ़ाई और साधुत्व के साथ सामंजस्य स्थापित कर कैसे चला जाय?

महाराज – यह याद रखना होगा कि पढ़ाई का उद्देश्य है साधुता का निर्माण करना, विद्वान होना नहीं है। पढ़ाई-लिखाई हमारे जीवन में सहायता करेगी। विद्वानों में विद्वता प्रधान है। उनकी पढ़ाई-लिखाई के साथ साधुता का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु हमलोगों के लिए साधुता ही लक्ष्य है। हमलोग जो पढ़ेंगे, उसे जीवन में आचरण करना या अभिव्यक्त करना ही लक्ष्य है। क्या विद्वानों का उद्देश्य भी यही है? नहीं। उनका विद्वत्ता ही लक्ष्य है। जीवन के साथ उनकी पढ़ाई का कोई भी सम्बन्ध रहे या न रहे।

– महाराज, ठाकुर वैकुण्ठनाथ सान्याल से पूछ रहे हैं, क्या तुमने पंचदशी पढ़ी है? वैकुण्ठनाथ सान्याल कह रहे हैं – वह क्या महाराज? ठाकुर कह रहे हैं – बच गये हो। ठाकुर ने ऐसा क्यों कहा?

महाराज – ऐसी पुस्तकें पढ़कर बड़े-बड़े प्रश्न करने से क्या लाभ है? जिसे हम लोग समझ नहीं सकते, ग्रहण नहीं कर सकते, उसका जीवन में आचरण नहीं कर सकते, उसके सम्बन्ध में केवल प्रश्न करने से क्या लाभ होगा? यह तो केवल बात ही होगी। हमने पुस्तक पढ़ी है या कोई बात सुनी है, किन्तु क्या हम उसे समझ रहे हैं?

– तब भी महाराज सिद्धान्त को पहले से पढ़ लेना या सुनना अच्छा है। उसके बाद उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जायेगा।

महाराज – केवल सिद्धान्त जानने से क्या होगा? क्या एक छलांग में सिद्धान्त तक पहुँचा जाता है? यदि हमलोग हजार बार बोलें – 'मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ', तो क्या मैं ब्रह्म हो रहा हूँ? बार-बार बोलने पर भी मैं ब्रह्म हूँ ऐसी उपलब्धि नहीं हो रही है। होगी भी नहीं। क्या एक छलांग में छत पर चढ़ा जाता है?

छत पर जाने के लिए सीढ़ी पर विश्वास करना होगा। विश्वास करना होगा कि इसी सीढ़ी पर से एक-एक कर हमें छत पर जाना होगा। सीढ़ी को अस्वीकार कर केवल छत पर जाओगे, ऐसा सोचने से क्या छत पर चढ़ना सम्भव होगा? सीढ़ी का अर्थ है, साधना। साधना की बात ठाकुर ने बार-बार कही है। 'मैं नहीं, मैं नहीं, तू ही तू ही', ऐसा अभ्यास करते-करते आगे बढ़ना होगा। ऐसा नहीं करने से कोई भी न कह सकेगा, न 'सोऽहं' की उपलब्धि कर सकेगा। 'नाऽहं नाऽहं' से 'सोऽहं' मिलेगा। एक व्यक्ति सोऽहं का उच्चारण कर रहा है। ठाकुर कहते थे, अभी ये

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

९१. धोखाधड़ी के खतरे

कभी-कभी धूर्त लोग संसार में सीधे-सादे लोगों पर हावी हो जाते हैं । आजकल तो यह धन्धा और भी अधिक प्रचलित हो गया है । मेरे एक मित्र के पास एक बड़ा सुन्दर चित्र था । एक अन्य सज्जन, थोड़े धार्मिक प्रकृति के और काफी धनी थे । उनकी आँखें उस चित्र पर गड़ गयीं । परन्तु मेरा मित्र उसे बेचने के लिए तैयार नहीं था ।

एक दिन वे दूसरे सज्जन आये और कहने लगे, "मुझे ईश्वर से एक दिव्य प्रेरणा और सन्देश प्राप्त हुआ है ।" मेरे मित्र ने पूछा, "आपको क्या सन्देश मिला है" वे बोले, "मुझे सन्देश मिला है कि वह चित्र आप मुझे सौंप दें ।"

मेरे मित्र ने तत्काल कहा, "बिल्कुल ठीक, कितनी अच्छी बात है! मुझे भी ठीक यही दिव्य प्रेरणा मिली है कि मैं वह चित्र आपको सौंप दूँ । तो क्या आप अपना चेक साथ लेकर आये हैं?"

उन्होंने पूछा, "चेक? कैसा चेक?"

मेरे मित्र ने कहा, "तब तो मुझे लगता है कि आपकी दिव्य प्रेरणा सही नहीं थी । मुझे तो यह सन्देश मिला था कि जो कोई भी एक लाख डालर का चेक लेकर आये, उसे वह चित्र दे दूँ । इसलिए आप पहले अपना चेक ले आइए ।"

इस पर उस व्यक्ति को लगा कि वह पकड़ा गया और तबसे उसने अपनी दिव्य प्रेरणा वाला तिकड़म छोड़ दिया । ये ही सब खतरे हैं ।

बॉस्टन में एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे, "मुझे कुछ दिव्य दर्शन मिले हैं, जिनमें मुझसे हिन्दू लोगों की भाषा में बातें की गयी हैं ।" मैंने कहा, "यदि मुझे वे सब बातें दिखायी जायँ, तो मैं विश्वास कर लूँगा ।" उन्होंने बहुत-से निरर्थक शब्द लिख डाले । मैंने उन्हें समझने की पूरी चेष्टा की, परन्तु कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा । मैं उनसे बोला कि जहाँ तक मैं समझता हूँ भारत में ऐसी भाषा न कभी रही है और न कभी होगी । वहाँ

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

क्या कर रहे हो? बोलो – 'नाऽहं-नाऽहं'। इस नाऽहं से ही सोऽहं की उपलब्धि होगी। नहीं तो, 'स' भी नहीं समझेगा, 'अहं' भी नहीं समझेगा। इसलिए स और अहं के अभेदत्व को भी नहीं समझेगा। कोबरा नाग नहीं पकड़ेगा, पनिहा साँप पकड़ेगा। सदा विचार करना होगा। विचार करते-करते तत्त्व की धारणा होगी। इसीलिए कह रहे हैं – '**आसुप्ते आमृते काले नयेत् वेदान्तचिन्तया**' – जब तक नींद नहीं आती, जब तक यह शरीर है, तब तक सर्वदा मन को वेदान्त-चिन्तन से पूर्ण रखना होगा। क्यों? जिससे मन को कामादि में प्रवेश करने का अवसर न मिले। इसलिए उपनिषद पढ़ो।

– ठाकुर कहते हैं कि सर्वदा विचार करो और पुन: कहते हैं कि हजार विचार करो, किन्तु 'मैं' नहीं जाता। तब, क्या उपाय है?

महाराज – हजार विचार करो – यहाँ 'विचार' का अर्थ है चर्चा करना। उससे नहीं होगा। जीवन में विचार के सिद्धान्त का आचरण करना होगा। बहुत अभ्यास और साधना करनी होगी। अभी सुन रहे हैं, किन्तु अभी भी संस्कार नहीं बन रहा है। अभ्यास, साधना करते-करते संस्कार बनता है। बहुत कठिन है। केवल विद्वत्तापूर्ण विचार करने और चर्चा करने से नहीं होगा। इसीलिए हमें यह श्लोक बड़ा अच्छा लगता है। यह बहुत आवश्यक है। ये ही हमारी साधना है। ये साधनाएँ करने और साथ में विचार करने से होगा। यह श्लोक है –

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित:।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।। **(कठ. १.२.२४)**

यहाँ प्रज्ञा का अर्थ है चर्चा करना, विचार करना। केवल विचार से नहीं होगा। इन सबकी साधना करनी होगी। **(क्रमश:)**

के लोग अभी इतने सभ्य नहीं हुए हैं कि ऐसी भाषा का प्रयोग कर सकें। वैसे उन सज्जन ने सोचा कि मैं दुष्ट तथा संशयवादी हूँ और अपनी राह पकड़ी। इसके बाद यदि मैं सुनूँ कि वे पागलखाने से छूटकर आये थे, तो मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं होगा।

दुनिया में ये दो तरह के खतरे हमेशा बने रहते हैं – एक तो धूर्तों से और दूसरा मूर्खों से। फिर भी हमें इनसे हताश नहीं होना चाहिए, क्योंकि संसार की सभी महान उपलब्धियों के मार्ग में खतरे बने ही रहते हैं। (२/२७३-७४)

९२. आत्मबलिदानी ही नेता बन सकता है

मेरे एक अंग्रेज मित्र जनरल स्ट्रॉँग (१८५७ ई. के) सिपाही-विद्रोह के समय इस देश में थे। वे गदर की बहुत-सी कहानियाँ सुनाया करते थे। एक दिन बातों-ही-बातों में मैंने उनसे पूछा, ''सिपाहियों के कब्जे में इतने तोप, गोले-बारूद और रसद थे; फिर वे लोग प्रशिक्षित तथा अनुभवी योद्धा भी थे। तथापि उन्हें हार का क्यों सामना करना पड़ा?''

उन्होंने उत्तर दिया, ''उसमें जो नेता थे, वे लोग आगे बढ़ने की जगह, पीछे के सुरक्षित स्थान से ही 'लड़ो बहादुरो', 'मारो बहादुरो' कह-कहकर चिल्ला रहे थे। जब तक आदेश देनेवाला अधिकारी स्वयं आगे बढ़कर मौत का सामना न करे, तब तक सारे फौजी पूरे दिल से नहीं लड़ सकते।''

हर क्षेत्र में यही सत्य है। कहावत है – 'सिरदार, तो सरदार'; यदि तुम किसी कार्य के लिये अपना जीवन दे सको, केवल तभी तुम नेता हो सकते हो। परन्तु हम सभी बिना आवश्यक आत्म-बलिदान किये ही नेता बनना चाहते हैं; इसीलिये इसका फल शून्य होता है और कोई भी हमारी बातें नहीं मानता। (८/१७५)

९३. पाँच अन्धे और हाथी (सभी धर्म सत्य हैं)

भारत के एक गाँव में एक जुलूस निकला। सभी लोग उस शोभायात्रा को और विशेष रूप से उसके साथ चल रहे सजे-धजे हाथी को देखने के लिये अपने-अपने घर से बाहर निकल आये। गाँव के लोग बड़े प्रसन्न थे, परन्तु वहाँ पाँच अन्धे लोग भी रहते थे और हाथी को देख नहीं सकते थे। उन लोगों ने निश्चय किया कि वे स्वयं ही हाथी को टटोल-टटोल कर उसके आकार के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे। उन्हें इस जाँच-पड़ताल के लिये मौका दिया गया।

जुलूस के चले जाने के बाद वे अन्धे लोग भी अन्य गाँववालों के साथ घर लौटे और उस हाथी के आकार के विषय में बातें करने लगे।

एक ने कहा, ''वह बिल्कुल एक दीवार जैसा था।''

दूसरा बोला, ''नहीं, वह तो रस्सी के टुकड़े जैसा था।''

तीसरे ने कहा, ''तुम दोनों गलत हो, मुझे तो बिल्कुल एक साँप के समान लगा।''

बहस तेज हो गयी। चौथा बोला, ''हाथी तकिये के समान था।'' विवाद ने शीघ्र ही उग्र रूप धारण कर लिया और आपस में कहा-सुनी होने लगी। पाँचों अन्धे आपस में लड़ने लगे।

उसी समय एक व्यक्ति उधर से होकर गुजर रहा था। उसने पूछा, ''मेरे मित्रो, बात क्या है?'' उसे विवाद का सारा विवरण समझाया गया। सुनकर वह आगन्तुक बोला, ''भाइयो, तुम सभी ठीक कह रहे हो, समस्या केवल इतनी ही है कि तुम लोगों ने हाथी के विभिन्न अंगों का स्पर्श किया है। दीवार-जैसा उसका बगल का हिस्सा था, रस्सी-सरीखी उसकी पूँछ थी, साँप के समान उसकी सूँड़ थी और तकिये के सदृश उसका पैर था। तुम लोग अपना झगड़ा बन्द करो; तुम सभी सही हो, समस्या केवल यह थी कि तुम सभी ने हाथी को अलग-अलग तरफ से अनुभव किया है।''

धर्म भी ऐसे ही झगड़े में फँस गया है। पश्चिम के लोग समझते हैं कि उन्हीं का धर्म ईश्वर का एकमात्र धर्म है और पूर्व के लोग भी ऐसा ही आग्रह करते हैं। दोनों भूल कर रहे हैं, क्योंकि ईश्वर प्रत्येक धर्म में है। (३/२३७-३८)

विवेक-विचार हमारी अमूल्य सम्पदा

रामकुमार गौड़, वाराणसी

मानव जीवन एवं सभ्यता को समुन्नत बनाने हेतु जिन नैतिक मूल्यों एवं अनुशासन की आवश्यकता होती है, उनमें विवेक-विचार का स्थान सर्वोपरि है। वस्तुत: विवेक-विचार से युक्त होना ही मनुष्यता का लक्षण है। यह विवेक-विचार निरक्षर से लेकर उच्चशिक्षित, सभी की अमूल्य सम्पदा है। यदि बचपन से ही इस दिशा में समुचित प्रशिक्षण और जागृति का परिवेश उपलब्ध हो, तो व्यक्ति एवं समाज के भौतिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में चमत्कारी सुपरिणाम सुलभ हो सकते हैं। इससे मनोगठन, कार्यप्रणाली तथा विचार, वाणी एवं कर्म के स्तर पर सजगता के साथ ही सुव्यवस्थित, यथार्थ हितकर दृष्टिकोण विकसित करने में बड़ी मदद मिलती है।

विवेक का अर्थ है – भले-बुरे, हित-अनहित, क्षणिक-चिरकालिक में भेद कर उत्कृष्ट परम कल्याणकारक तथा चिरहितकारी का चयन कर उस पर अमल करना।

विचार का अर्थ है – हर कार्य को गहन सोच-विचारपूर्वक कर तथा अपने एवं अन्य लोगों, परिस्थितियों, दृष्टिकोणों आदि से प्राप्त अनुभवों के आलोक में विचारशीलता को सतत जाग्रत रखकर यथावश्यक, वांछनीय कार्यों में प्रवृत्त होना। वांछनीय और अवांछनीय अथवा उत्कृष्ट और निकृष्ट विचारों का वर्गीकरण करके सजगतापूर्वक उत्कृष्ट और वांछनीय विचारों का पोषण करते हुए अग्रसर होना भी विवेक-विचार का मूल प्रतिपाद्य है। हमारे मन में भावों का जो महासंग्राम चलता रहता है, उनमें विवेक-विचार की सहायता से उत्कृष्ट पथ का चयन कर लेना समय की माँग होती है। यदि हम अविचार या अविवेकपूर्वक अथवा विवेक-विचार के प्रति उपेक्षाशील या उदासीन रहकर अन्यथा व्यवहार करते हैं, तो पश्चात्ताप के साथ जग-हँसाई के पात्र बन जाते हैं। कहा भी गया है –

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय।।

प्रश्न यह है कि ईश्वर प्रदत्त इस विवेक-विचार को अधिक सजग, समुन्नत और प्रखर कैसे बनाया जा सकता है? इसके लिये अपनी दिनचर्या में बीच-बीच में अन्तर्मुख होकर स्वयं अपने मन को प्रशिक्षित करना होगा। कुसंग एवं प्रतिगामी परिस्थितियों से यथासम्भव बचते हुए आत्मोन्नति कारक सद्गुणों के संचय में रुचि रखनी होगी। दूसरे लोगों, परिस्थितियों एवं दृष्टिकोणों में दोष दिखे, तो उस स्थिति में अपने लिए 'सीखने का पाठ' ग्रहण कर लेना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति, परिस्थिति, और दृष्टिकोण में दोष-दर्शन को सही दिशा देकर आत्मोन्नति कारक सदगुणों के प्रति ग्रहणशील बनने के साथ अपने भावी जीवन में संभावित उन दोषों-विकारों के खतरे से बचने के प्रति सतत सजग रहना विवेक-विचार के अन्तर्गत ही है।

मनुष्य का मन पशुत्व और देवत्व, इन दो विरोधी विचारों की सीमाओं में भटकता रहता है। विवेक-विचार की शक्ति मनुष्य की ही अमूल्य सम्पदा है, पशु इससे वंचित हैं। इसलिए मन को सदैव ऊर्ध्वगामी, उदात्त विचारों से जोड़कर ही हम पशुत्व से ऊपर उठकर दिव्यता की अभिव्यक्ति कर सकते हैं। विवेक-विचार की इतनी ही भूमिका है कि हमें उक्त दोनों का भेद बताते हुए वह जीवन पर्यन्त, निरंतर दैवी सम्पदा के अर्जन एवं अभिव्यक्ति में मदद करे तथा जब भी मन निम्नगामी मनोभावों से डाँवाडोल हो, तब अन्तरात्मा की आवाज को मुखर करके हमें दिव्यता की अभिव्यक्ति के प्रति आकर्षित करके सक्रिय करता रहे। मन को सदैव आत्मसंयम, आत्मनिग्रह के प्रति उन्मुख करके नि:श्रेयस् (परम कल्याण) के पथ की डोर से बाँधकर रखना ही विवेक-विचार की सार्थकता है।

भौतिक जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी विवेक-विचार हमारा परम सहायक है। इसके द्वारा हमें अच्छे-बुरे व्यक्ति, परिवेश, परिस्थिति, एवं दृष्टिकोणों का सटीक ज्ञान हो सकता है, जिससे हमारी भौतिक समृद्धि अधिक विश्वसनीय, टिकाऊ, लोकप्रिय एवं गरिमापूर्ण बन सकती है। विवेक-विचार की शक्ति का सदुपयोग करके एक छात्र प्रलोभनकारी, आडंबरपूर्ण, अनुचित एवं शार्ट-कट उपायों वाली परिस्थितियों और साधनों को सहज ही छोड़कर तथा वांछनीय उत्कृष्ट कार्य प्रणाली का अवलम्बन करके लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। नई-पुरानी आदतों, भोजन, पोशाक, चिन्तन-प्रणाली आदि अनेक क्षेत्रों में विवेक-विचार के अनुप्रयोग से जीवन सरल, सुव्यवस्थित, सार्थक और धन्य हो सकता है।

तीव्र इच्छा, आवेग, उत्तेजना, घृणा, नापसंदगी, ईर्ष्या आदि की प्रबलता के क्षणों में विवेक-विचार को जागृत रखना बड़ा कठिन है। बेहतर यही है कि ऐसी परिस्थितियों में उदासीन या साक्षीभाव का दृष्टिकोण रखा जाय तथा किसी भी प्रतिक्रिया से बचा जाय। ऐसे मनोभावों से ग्रस्त होने पर प्रार्थना, स्वाध्याय सत्संगति, ईश्वरभक्ति आदि साधनों द्वारा मन को उदात्त एवं ऊर्ध्वगामी बनाने का प्रयास करना चाहिए। फिर, नकारात्मक मनोभावों के प्रवाह के चले जाने के बाद, मन के कुछ शान्त या स्थिर हो जाने पर ही विवेक-विचार के सूत्र को पकड़कर सटीक चिन्तन या उचित निर्णय के पथ पर अग्रसर होना अच्छा है।

युवावस्था की अनुभवहीनता, आवेगप्रवणता, उतावलेपन अदूरदर्शिता आदि के कारण विवेक-विचार की धारा प्रखर होने में समय लगता है। सभी बातों के प्रति भोगैकसर्वस्व, इन्द्रियपरक, तात्कालिक सुखप्रद दृष्टिकोण भी विवेक-विचार के गहरे नितल में पड़े जीवन मूल्य रूपी रत्नों तक पहुँचने में बाधक बनता है। ऐसी स्थिति में किसी अनुभवी, अनासक्त, नि:स्वार्थ एवं सरलमना व्यक्ति की संगति, सत्साहित्य के स्वाध्याय, प्रार्थना धैर्य आदि का अवलम्बन करके विवेक-विचार की सुप्त शक्ति को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

विवेक-विचार को दिनचर्या में शामिल करके अमल में लाना सभी के लिए अवश्य करणीय है। शिक्षकों और अभिभावकों का यह दायित्व बनता है कि वे देश के भावी कर्णधार स्वस्थ बच्चों में विवेक-विचार करके कार्य में प्रवृत्त होने की आदत विकसित करें। इससे बच्चों में उतावलेपन तथा नकारात्मक मनोभावों से दूर रहने की प्रवृत्ति तो आयेगी ही, साथ ही मूल्यबोधपरक शिक्षा का वांछित लक्ष्य – मानवीय सद्गुणों तथा चरित्र का विकास भी प्राप्त करने में बड़ी मदद मिलेगी। विवेक-विचारयुक्त चिन्तन प्रणाली की आदत को घर-परिवार एवं विद्यालयों में लोकप्रिय बनाने से बच्चे बुरी आदतों, नशाखोरी, कुसंग के दुष्प्रभाव अवहेलना, उच्छृंखलता आदि दुर्गुणों से मुक्त हो सकते हैं। यदि सप्ताह में एक-दो दिन भी बच्चों के बीच इसके महत्त्व को रेखांकित करके, उन्हें सटीक और सकारात्मक चिन्तन प्रणाली के महत्त्व को समझाते हुए उसमें विवेक-विचार की भूमिका को उजागर किया जाय, तो उन्हें दुर्गुणों से बचने तथा स्वावलम्बन युक्त कर्मठ जीवन जीने में मदद मिल सकती है। अध्यापकों, अभिभावकों तथा अन्य लोगों को भी विवेक-विचार युक्त चिन्तन प्रणाली से आत्मोन्नति तथा समाजोत्थान में बड़ी मदद मिल सकती है। ○○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३०४. रामकाज करिबे को आतुर

लंका-विजय के बाद भगवान राम जब अयोध्या में सिंहासन पर बैठे, तो उन्होंने सबको एक-एक काम सौंपा। हनुमानजी श्रीराम उन्हें कौन सा काम देते हैं, इसकी प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु जब उन्हें कोई भी काम न मिला, तो उन्होंने सोचा कि क्यों न मैं ही अपने लिये कोई काम चुन लूँ। उन्होंने तय किया कि जब भी प्रभु को जम्हाई आएगी, वे चुटकी बजाएँगे। इससे जम्हाई बंद हो जाएगी। वे उठकर स्वामी के पास गए और उनके मुख की ओर देखने लगे। जब बड़ी देर तक जम्हाई नहीं आई, तो उन्हें कुलबुलाहट-सी हुई।

रात्रि को जब श्रीराम शयन कक्ष में जाने लगे, तो मारुति भी पीछे-पीछे जाने लगे। यह देख भरतजी ने उनसे कहा – श्रीरामजी के विश्राम का समय हो गया है। उन्हें शान्तिपूर्वक आराम करने दें और वे हनुमान जी को एक ओर ले गये। भरतजी के जाने के बाद पवनपुत्र सोचने लगे कि यदि स्वामी को जम्हाई आएगी, तो उन्हें इसका पता कैसे लगेगा। उन्हें जम्हाई न आए, इसलिए पवनपुत्र ने चुटकी बजाना शुरू किया। इससे प्रभु का मुँह खुला का खुला रह गया। यह देख सीतामाता परेशान हो गईं। उन्होंने प्रभु को मुँह बंद करने को कहा, किन्तु वह बंद ही नहीं हो रहा था। बाहर आने पर जब उनकी दृष्टि हनुमानजी की ओर गई, तो उन्होंने हनुमानजी से चुटकी बजाने का कारण पूछा। कारण मालूम होने पर वे मारुति को शयन कक्ष में ले गईं। श्रीराम का मुख खुला देख वे भी चकित रह गए। जब उन्हें चुटकी बजाना बंद करने को कहा गया, तो चुटकी बजाना बंद करते ही प्रभु का मुख बंद हो गया। सीताजी ने उनसे कहा 'तुम तो प्रभु को प्राणों से भी प्रिय हो। ऐसे सर्वप्रिय सेवक को काम बताया नहीं जाता। वह हर काम करने के लिए स्वतंत्र है।'' भगवान कृपालु तथा मंगलमय होते हैं। उनका भक्त श्रद्धावश उन्हें अपना मानकर उनकी सेवा करने के लिए अधीर हो जाता है। उसका श्वास-प्रश्वास, आस्था-विश्वास, निष्ठा-ध्यान और आयास-प्रयास सब प्रभुमय होता है। स्वामी का आदेश उसके लिये सर्वोपरि होता है। उनकी आज्ञा के पालन में ही वह अपना सुख निहित मानता है। ○○○

नन्हा निमाई

हमलोग मन्दिर में जब भी जाते हैं, तो मन्दिर के देवता को प्रणाम करके उनका प्रसाद ग्रहण करते हैं। प्रसाद का अर्थ होता है भगवान को निवेदित वस्तु। किन्तु जो वस्तु भोग लगाने के लिए रखी हुई हो, उसे भोग लगाने के पहले ही कोई खाना चाहे तो?

निमाई की उम्र पाँच-सात वर्ष की रही होगी। एक दिन वह जोर-जोर से रोने लगा। रोते ही जा रहा था। निमाई की माँ ने पूछा, 'बेटा, तू क्यों रो रहा है, तुझे जो चाहिए, बोल।'

निमाई ने रोते-रोते कहा, 'माँ, पड़ोस वाले घर में भगवान के लिए जो भोग बना है, मुझे वह चाहिए।' माँ तो घबरा गई, क्योंकि जो वस्तु भगवान के लिए बनाई जाती है, उसे मन से भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। माँ ने निमाई से कहा, 'बेटा, जब तक भगवान का भोग नहीं लगता, तब तक नहीं खाते। पूजा होने के बाद मैं तेरे लिए उस घर से मिठाई आदि लेकर आऊँगी।'

निमाई तो बिल्कुल भी मानने को तैयार नहीं। वह तो रोए जा रहा है। किसी ने जाकर पास वाले घर में, जहाँ भगवान का नैवेद्य लग रहा था, कहा कि निमाई इस कारण से रो रहा है। उन लोगों को भी आश्चर्य हुआ कि इस नन्हें-से निमाई को कैसे पता चला कि उनके यहाँ भगवान के भोग के लिए मिठाई आदि वस्तुएँ रखी गई हैं। जो भी हो, वे लोग आनंद से निमाई के पास नैवेद्य लेकर आए और उसने भी बड़े प्रेम से खाया। कोई साधारण बालक ऐसा करे, तो यह अच्छा नहीं माना जाएगा, किन्तु निमाई क्या साधारण बालक था?

महाप्रभु चैतन्यदेव के बचपन का नाम निमाई था। उनकी माता का नाम शची देवी और पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। उनका जन्म १४८५ के फाल्गुन मास की होली पूर्णिमा के दिन बंगाल के नवद्वीप में हुआ था। निमाई नाम के पीछे भी बहुत सारी बातें हैं। कुछ कहते हैं कि इनका जन्म नीम के वृक्ष के नीचे हुआ था, इसलिए निमाई नाम रखा गया। एक और कारण – नीम कड़वा होता है, इसलिए ऐसा नाम रखने से मृत्यु के देवता यमराज उनके पास जल्दी नहीं आएँगे और उनकी आयु लम्बी होगी। जो भी हो, चैतन्य महाप्रभु को भगवान का अवतार माना जाता है। उन्होंने सबको यह सिखाया था कि भगवान का नाम लेने से लोगों की सब दुर्बलताएँ दूर हो जाती हैं और वे जीवन में आनन्द प्राप्त करते हैं।

हाँ, तो हम निमाई की बाल-लीला की बात कर रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण की तरह निमाई की भी अद्भुत बाल-लीलाएँ थीं और गाँव के लोग भी उसे बहुत प्रेम करते थे। वृन्दावन के कन्हैया की तरह निमाई भी बहुत चंचल था। उसकी माँ उसकी शरारतों से परेशान हो गई थीं।

एक दिन निमाई शाम को अपने मुहल्ले में अकेला खेल रहा था। उसने बहुत-से आभूषण पहन रखे थे, उसमें से कुछ सोने के भी थे। इतने में वहाँ एक चोर आ गया। निमाई को अकेला देखकर और उसके शरीर पर सोने के आभूषण देखकर उसके मन में लालच आ गई। वह उसे मीठी-मीठी बातों में भुलाकर गोद में लेकर चल पड़ा।

इधर निमाई को घर में न देखकर उसके माता-पिता चिन्ता में पड़ गए। माता शची देवी तो पूरे मुहल्ले में उसे ढूँढ़ने लगीं। निमाई के पिता और बड़े भाई विश्वरूप भी उसे यहाँ-वहाँ बहुत ढूढ़ने लगे।

चोर ने सोचा कि एकान्त स्थान पर ले जाकर निमाई के सभी गहने उतार देगा। किन्तु चोर घूम-फिरकर निमाई के घर पर आ गया और उसे वहीं छोड़ दिया। कहते हैं, निमाई के स्पर्श से ही चोर के अन्दर एक अद्भुत परिवर्तन आ गया। उसे पश्चात्ताप होने लगा कि वह बहुत बुरा काम कर रहा है। वह उसके जीवन की अन्तिम चोरी का प्रयास था।

गोकुल में नन्हे कन्हैया का भी जो कोई बुरा करने आते थे, वे भी उसके स्पर्श मात्र से सुधर जाते थे। निमाई बाद में चैतन्य महाप्रभु हुए, वे भी तो भगवान के अवतार थे। इस महीने उनकी जन्मतिथि पर उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम। ○○

पुरुषार्थी और निर्भय बनो

स्वामी मुक्तिमयानन्द

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई

जीवन में बहुधा ऐसी स्थिति आती है कि हम चाहकर भी आगे बढ़ने का साहस नहीं कर पाते। मार्ग की बाधायें, असफलता का भय, सामाजिक-आर्थिक और अन्य मानसिक चिन्तायें, जैसे कई कारण हमारे पैरों में बेड़ियाँ डालकर हमें आगे बढ़ने से रोक देते हैं। हमारे स्वप्न, हमारी इच्छायें आसमान को छूने की होती हैं, पर इन स्वप्नों को साकार करने हेतु प्रयास आरम्भ करते ही हमारी स्थिति कुरुक्षेत्र के अर्जुन-सी हो जाती है । महावीर अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं –

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

– मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प और रोमांच हो रहा है । हाथ से मेरा गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़े रहने में भी समर्थ नही हूँ ।

हम भयभीत हो जाते हैं। डरकर अपनी आत्मशक्ति खो बैठते हैं। लेकिन ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। अगर ऐसी स्थिति अर्जुन के समान वीर की हो सकती है, जिसने अकेले ही कितने युद्ध लड़े थे, तो हमारी ऐसी अवस्था का होना तो स्वाभाविक ही है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''दुर्बलता ही संसार में समस्त दुख का कारण है, इसीसे सारे दुख-कष्ट उत्पन्न होते हैं । हम दुर्बल हैं, इसीलिए इतना दुख भोगते हैं । हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इस प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं । दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं । जहाँ हमें दुर्बल करनेवाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है, न दुख ।''

ये जीवन के वे क्षण हैं, जहाँ हमें श्रीकृष्ण की तरह किसी मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है, जो हमारे साहस, धैर्य व आत्मविश्वास को जगा सके। हमें इस विषम परिस्थिति में वैसे ही साहस और आत्मविश्वास को झकझोरकर जगाने वाली शंखनाद सम वाणी 'क्लैब्यं मा स्म गम: पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ' की आवश्यकता होती है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'हे अर्जुन! नपुंसकता (कायरता) का आलम्बन मत लो। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं जान पड़ती। हे वीर! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ।'

एक खिलाड़ी महिला का अर्धांग पक्षाघात से ग्रस्त हो गया। उनके पति जिस समय कारगिल-युद्ध में देश की सुरक्षा में व्यस्त थे, तभी इनकी रीढ़ की हड्डी में ट्यूमर का पता चला। तीन बार सर्जरी हुई, पर उनके कमर के नीचे के अंगों में पक्षाघात हो गया। किन्तु यह शारीरिक विकलांगता उनके मनोबल को न तोड़ पायी। इन शारीरिक अक्षमताओं के बावजूद उन्होंने खेलों में अनेक सफलताएँ प्राप्त कीं। उनकी पदक तालिका में एक और सितारा जुड़ गया। २०१६ में ब्राजिल में हुई पैरालम्पिक खेल स्पर्धा में उन्होंने शॉटपुट स्पर्धा में देश के लिए रजत-पदक जीता। ये प्रतिभावान पैरालम्पिक पदक जीतने वाली भारत की प्रथम महिला खिलाड़ी थी। उनका नाम श्रीमती दीपा मलिक है।

स्वामी विवेकानन्द भगवान श्रीकृष्ण के इन शब्दों का महिमागान करते हुए कहते हैं – '' ऐ मेरे युवको ! यदि तुम लोग जगत को यह सन्देश पहुँचा सको, 'क्लैब्यं मा स्म गम: पार्थ नैत्तत्त्वय्युपपद्यते – हे अर्जुन! कायरता को मत प्राप्त होओ' – तो ये सारे रोग-शोक, पाप और विषाद तीन दिन में धरती से निर्मूल हो जायेंगे।''

श्रीकृष्ण की निर्भय वाणी से महापराक्रमी अर्जुन का संशय दूर हो गया था। वीर अर्जुन ने पूर्ण साहस, समर्पण व आत्मविश्वास के साथ युद्ध किया और सफल हुये। जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भयमुक्त करने हेतु उनकी भर्त्सना की। वैसे ही स्वामी विवेकानन्द प्रमादी, अकर्मण्य पलायनवादी लोगों को सावधान करते हुए कहते हैं, 'तुम कायर होकर कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। ... एक पग पीछे हटकर तुम किसी भी दुर्भाग्य को टाल नहीं सकते।'' ऐसी स्थिति में हमने जो महान आदर्श स्वीकार किया है, वही हमारा संघर्ष और उत्साह का सम्बल रहता है। अत: हमें पुरुषार्थी और निर्भय होकर जीवन में आगे बढ़ना चाहिये। ○○○

गीतातत्त्व चिन्तन (८/७)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है । सं.)

योग का अर्थ है ईश्वर से युक्त हो जाना। हमारा मन जितना ईश्वर से युक्त हो जाएगा, आप देखेंगे कि कार्यक्षमता उतनी ही बढ़ जाएगी। आज मेरा मन चंचल है, तो आज जिस काम को मैं चार घण्टे में करता हूँ, यदि मन के एक भाग को मैं ईश्वर के चरणों में रखने में समर्थ हो गया, तो दावे से कहता हूँ कि उसी काम को मैं केवल दो घण्टे में कर सकता हूँ। यदि मेरी एकाग्रता भगवान के चरणों में और बढ़ गयी, तो जिस काम को मेरा चंचल मन चार घण्टे में करता है, उसको वही मन एक घण्टे में करने में समर्थ होगा। इसीलिए कहा गया है कि योग कर्म की कुशलता है - **योगः कर्मसु कौशलम्**। यह जो ईश्वर का चिन्तन और मनन है, जिसका हम बारम्बार अभ्यास करते हैं, उसी को अभ्यासयोग कहा गया है। उससे हमारे भीतर अन्तः प्रवाहित सलिला के समान ईश्वर का चिन्तन और स्मरण सतत चलता रहता है। अभ्यास के द्वारा मन को ईश्वर के चिन्तन में रखा जा सकता है। जब हम दुनिया का काम करते हैं, तो मानो अन्तः में भगवान के चरणों की ओर एक चिन्तन-सरिता प्रवाहित होती रहती है। हम जाग्रत मन से सब काम करते रहते हैं। जहाँ काम से थोड़ी-सी भी फुरसत मिली कि हमारा पूरा मन भगवान के पास चला जाता है। इसीलिए पिछले श्लोक में कहा गया – **तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर युध्य च** – इसीलिए हे अर्जुन, तू सब समय मेरा चिन्तन कर और युद्ध कर। घोर, कठोर दीखता है यह युद्ध, उसमें भी ईश्वर का चिन्तन क्यों नहीं किया जा सकता। मैं दूसरा उदाहरण भी बहुत बार देता हूँ। एक बार मुझे ठोकर लगी, तो लँगड़ा कर चलने लगा। तीसरे दिन सपना देखा, तो देखता हूँ सपने में भी मैं लँगड़ा कर चल रहा हूँ। इसका मतलब क्या हुआ? मतलब यह कि उस चोट ने मेरे मन पर ऐसा संस्कार डाल दिया कि केवल दो ही दिनों में मैं सपने में भी अपने को लँगड़ाकर चलते देखता हूँ।

यहाँ पर भी जब हम बारम्बार मन पर जो संस्कार डालने की चेष्टा करते हैं, तो अवश्य वह संस्कार बलवान बनेगा। इसीलिए भगवान यहाँ पर कहते हैं **मय्यर्पितमनोबुद्धिः मामेवैष्यस्यसंशयम्** – जब तू अपना मन और बुद्धि मुझमें अर्पित करेगा, तो निःसंशय तू मुझे प्राप्त करेगा। मन संकल्प-विकल्प करता है और बुद्धि के द्वारा हम निश्चय करते हैं। अन्तःकरण की ये दो वृत्तियाँ प्रधान हैं। वैसे जो अन्तःकरण है, उसमें चार वृत्तियाँ बताई गईं – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। पर मन और बुद्धि ही सामान्य रूप से हमारे सामने आते हैं। सामान्यतया या तो हम संकल्प-विकल्प करते हैं अथवा निश्चय करते हैं। भगवान यहाँ पर कह रहे हैं कि यदि तू संकल्प-विकल्प का आधार मुझे ही बना ले और जो तू निश्चय करता है, उस निश्चय का आधार भी तू मुझे ही बना ले, अर्थात् मन को भी अर्पित कर दे, बुद्धि को भी अर्पित कर दे। अर्थात् यदि तू ऐसा मानने लगे, कि तेरे मन में जो संकल्प-विकल्प उठ रहा है, वह भी मेरी प्रेरणा से ही उठ रहा है, तो तू मुझे अवश्य प्राप्त करेगा। यह जो मन और बुद्धि का अर्पण है, यह हमें भगवान की प्राप्ति करा देता है। इसकी घोषणा भगवान यहाँ ७वें श्लोक में करते हैं। ८ वें श्लोक में प्रभु कहते हैं कि हे पार्थ ! अभ्यासयोग के द्वारा अनुचिन्तन करके उस चित्त के द्वारा जो कहीं दूसरी ओर नहीं जाता है, अर्थात् बारम्बार चिन्तन करके वह परम दिव्य पुरुष को प्राप्त करता है।

दिव्य पुरुष कौन है? और ईश्वर-ध्यान के विभिन्न रूप

यह दिव्य पुरुष कौन है? तो यहाँ पर दिव्य पुरुष के सम्बन्ध में तीन प्रकार के लक्षण हमारे समक्ष आते हैं। एक है सगुण-निराकार, दूसरा निर्गुण-निराकार और तीसरा सगुण-साकार है। इसका मतलब क्या है? सगुण-निराकार

वह जो गुणात्मक तो है, उसमें दया है, उसमें करुणा है। सारे दिव्य गुण हैं, पर जिसका कोई रूप नहीं है। मानो जब हमें सगुण-समाधि होती है, तो वहाँ पर हम ईश्वर के भाव का चिन्तन करते हैं। वहाँ ईश्वर का कोई रूप नहीं होता है। यदि रूप होता है, तो वह दिव्य होता है, तैजस् होता है, तेजोमय होता है, ज्योतिर्मय होता है। ऐसे साधक होते हैं, जिनको ईश्वर के किसी अन्य रूप की आवश्यकता नहीं होती, वे ईश्वर के केवल दिव्य रूप का ही चिन्तन करते हैं। मानो इनके लिए ईश्वर कैसा है, वह दिव्य ज्योति युक्त है, दिव्य आभा से युक्त है। वे किस प्रकार चिन्तन करते हैं? वे अपने हृदय-देश में एक ज्योति बिम्ब की कल्पना करते हैं, ज्योति बिम्ब का ध्यान करते हैं। ज्योति बिम्ब का ध्यान करते-करते वे यह देखते हैं कि वह बिम्ब धीरे-धीरे आकार में बढ़ रहा है और बढ़ते-बढ़ते उसने सारे शरीर को छा लिया। सारे शरीर को छाने के बाद, वह ज्योति-बिन्दु मानो और भी बड़े आकार का होकर शरीर के बाहर निकल रहा है। फिर उस ज्योति-बिन्दु ने धीरे-धीरे समग्र संसार को व्याप्त कर लिया है। वह विश्वाकार हो गया है। जहाँ भी दृष्टि जाती है, वहाँ एक ज्योति ही ज्योति दृष्टिगोचर होती है। यह सगुण-निराकार का चिन्तन है। इसका मतलब यह हुआ कि वह ईश्वर को गुणवाला मानता है। ईश्वर कैसे हैं? वे बड़े दयालु हैं। वे अत्यन्त करुणाशील हैं। उनके अन्दर दया कूट-कूटकर भरी हुई है। वे कृपा के सागर हैं। मानो इन सब गुणों का चिन्तन भी चलता है। पर उसके किसी रूप पर आसक्ति नहीं होती। अगर उसका कोई रूप है तो वह अरूप रूप है। इसका कोई आकार है, तो निराकार आकार है। यह एक प्रकार का ईश्वर का ध्यान है।

दूसरा जो ईश्वर का ध्यान बताया गया, जिसको परमगति कही गई तथा जिसकी चर्चा १०वें श्लोक में की गयी है। उसके सम्बन्ध में कहा गया कि निराकार ही वह अव्यक्त रूप है। वहाँ पर कोई रूप नहीं है। पर धीरे-धीरे साधक मन-बुद्धि के परे एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जिसको अमनी मन कहते हैं। जिसको चौथी अवस्था के नाम से निर्देशित किया गया। हमारे उपनिषदों में माण्डूक्य उपनिषद कहता है - **प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः** – जिस समय प्रपञ्च का उपशम हो जाता है, उस समय वह शिव की अवस्था होती है, अद्वैत की अवस्था होती है। वह चौथी अवस्था है और उस चौथी अवस्था को तुरीय अवस्था के नाम से भी पुकारते हैं। जहाँ पर मन मानो अपने को ही छलाँग मारकर पार कर जाता है। मैंने कई बार लिंकन बार्नट् का उदाहरण दिया है। वे एक वैज्ञानिक थे। विज्ञान पर कॉलम लिखा करते थे। उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तक लिखी, 'द यूनिवर्स एण्ड डॉ. आइन्स्टाईन'। उस पुस्तक में वे एक स्थान पर कहते हैं, 'The man has a unique capacity to transcend himself and perceive himself in the act of preception' अर्थात् मनुष्य में अपने को लाँघकर अपने को देखने की एक अपूर्व क्षमता है। इसको हम साक्षी-भाव कहते हैं। मनुष्य अपने को कैसे लाँघेगा, अपने मन को कैसे पार करेगा? यह विद्या विज्ञान के पास तो नहीं है। यह विद्या है वेदान्त के पास। यहाँ पर यह बताया गया है कि मनुष्य अपने मन को भी कैसे पार करे। मन को पार करने की विद्या, जिस समय मन अमनी हो जाता है, उस विद्या को बताया गया। मानो मन कहें, पर मन तो नहीं है, पर मन के समान ही लगता है। इसीलिए उसको अमनी मन कह दिया। अर्थात् मन तो है, पर अमनी मन है। हमने वेदान्त के क्षेत्र में ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा था, जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, जिसका वाणी के सहारे वर्णन नहीं हो सकता, जिसको मन चिन्तन का विषय बना नहीं सकता, ऐसा जो ब्रह्म है, उसका निरूपण कैसे हो? शब्दों से निरूपण बड़ा कठिन है। इसीलिए हम देखेंगे कि विरोधी गुणों के द्वारा युक्त कर ब्रह्म का निर्वचन किया गया है। हम ईशावास्योपनिषद् में पढ़ते हैं, जहाँ बिल्कुल विरोधी गुण आत्मा पर लगा दिये गये हैं। आत्मा और ब्रह्म – ये समानार्थी हैं। उसी तत्त्व को जब समष्टि के सन्दर्भ में देखते हैं, तो हम कहते हैं – ब्रह्म और जब व्यष्टि के सन्दर्भ में देखते हैं, तो उसे कहते हैं – आत्मा। आत्मा और ब्रह्म में तत्त्वत: कोई भेद नहीं है। केवल व्यष्टि और समष्टि के सन्दर्भ का भेद है। **(क्रमशः)**

भारत की ऋषि परम्परा (१५)

स्वामी सत्यमयानन्द

महर्षि जमदग्नि

महर्षि जमदग्नि के पिता का नाम महर्षि ऋचीक और माता का नाम सत्यवती था। पुराणों में दोनों के विवाह का अद्भुत वर्णन आता है। एकबार राजा गाधि महर्षि ऋचीक को प्रणाम करने उनके आश्रम पधारे। जब महर्षि ने विवाह के लिए उनकी राजकन्या माँगी, तो राजा चकित हो गए। राजवैभव में पली अपनी कन्या का हाथ वे कैसे एक निर्धन अरण्यवासी तापस को दे सकते थे।

महर्षि ऋचीक यदि युवावस्था में होते, तो राजा को इस विवाह से प्रसन्नता होती। उनका मन दुविधा में पड़ गया कि कैसे इस संकट से उबरा जाए। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने महर्षि ऋचीक से कहा कि यद्यपि क्षत्रियों में यह प्रथा है कि कन्या स्वयं अपने वर को चुन सकती है और उन्हें इस विषय में कुछ नहीं कहना है, तथापि यदि ऋचीक उन्हें एक हजार श्याम कर्ण सफेद घोड़े देंगे, तो वे अपनी कन्या का विवाह उनसे कराएँगे।

निस्सन्देह यह राजा की एक युक्ति थी, ताकि इसकी असंभाव्यता से ऋषि हतोत्साह हो जाएँ अथवा प्रयत्न करते-करते थककर हार जाएँ। यह सोचकर कि उन्होंने ऋषि ऋचीक को भूल-भुलैया में भेज दिया है, राजा सन्तुष्ट होकर महल चले गए।

घोड़ों की खोज में जाने के बजाय ऋचीक ने वरुण देवता से प्रार्थना की और उन्होंने ऋषि को एक हजार श्याम कर्ण वाले घोड़े दिए। ऋचीक घोड़ों के झुंड को तेजी से भगाते हुए राजा गाधि के पास गए। राजा को जब इस तुमुल ध्वनि का कारण पता चला, तो वे मूर्च्छित हो गए। यह युक्ति उन्हें बहुत महँगी पड़ी।

गाधि को होश आया। वे वचनबद्ध थे, इसलिए उन्होंने अपनी कन्या ऋषि को दे दी। कालान्तर में सत्यवती को पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने जमदग्नि रखा। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र गाधि के सुपुत्र थे, इसलिए वे जमदग्नि के मामा बने। इससे जमदग्नि का नाम विख्यात हुआ।

धर्मपरायण और आचार-निष्ठ महर्षि ऋचीक ने अपने पुत्र को भी अपने अनुरूप प्रशिक्षित किया। इसके साथ धर्मप्राणा माता सत्यवती ने भी अपनी स्नेहमयी शिक्षा पुत्र को दी। आश्रम के शान्त वन्य वातावरण में रहते हुए और निष्ठापूर्वक वेदाध्ययन करते हुए जमदग्नि बढ़ने लगे। महाभारत में वर्णन आता है कि जमदग्नि को सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान था। वे नित्य ध्यान-उपासना करते थे और अपने देवतातुल्य माता-पिता के प्रति समर्पित थे।

जमदग्नि जब बड़े हुए, तब उनकी विभिन्न तीर्थों में जाकर वहाँ के अधिष्ठातृ देवताओं की पूजा करने की इच्छा हुई। तीर्थ यात्रा के बाद लौटते समय वे राजा प्रसेनजित से मिले। उनके शान्त तेजोमय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा ने उन्हें आतिथ्य ग्रहण करने की विनती की। राजमहल में रहते समय जमदग्नि का परिचय राजा की पुत्री राजकुमारी रेणुका से हुआ और दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगे। राजा को भी इस विषय में पता लगा। जब जमदग्नि रेणुका का हाथ माँगने राजा के पास आए, तो वे सहर्ष सहमत हो गए। विवाहोपरान्त वे नर्मदा तट पर रहने लगे। नर्मदा तट के अन्न-फल से भरपूर सुरम्य वातावरण में वे सुखपूर्वक रहने लगे। कालान्तर में उन्हें पाँच पुत्र हुए। उनके नाम रुमण्वान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और प्रसिद्ध परशुराम थे।

एकबार रेणुका अपने पाँचों कुमारों को फल संग्रह के लिए भेजने के बाद नर्मदा नदी में स्नान करने गईं। उन्होंने दूर से राजा कार्तवीर्यार्जुन को अपनी रानियों के साथ आनन्दपूर्वक जलक्रीड़ा करते देखा। वे पीछे लौटकर नदी की विपरीत दिशा में विविक्त स्थान की खोज में गईं। कुछ समय बाद उन्हें एक स्थान दीखा। किन्तु वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि मृत्तिकावती के राजकुमार चित्ररथ अपनी
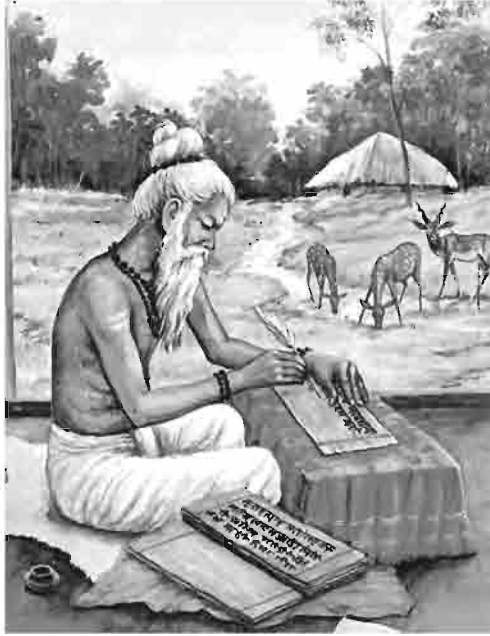
पत्नी के साथ आनन्द और तन्मय होकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं। उनके आनन्द और सुख को ईर्ष्यापूर्वक वे बहुत देर तक खड़ी-खड़ी देखने लगीं। रेणुका ने अन्तत: अपनी दृष्टि तो वहाँ से हटाई, किन्तु मन वहीं रह गया और वे आगे चली गईं।

स्नानोपरान्त वे आश्रम लौटीं, किन्तु उनके मन में अस्थिरता और अपवित्रता थी। उनका मन निम्न विचारों से आक्रान्त हो गया था। जमदग्नि उनकी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी का मन निम्न विचारों से भर गया है और वह अपने आदर्श से च्युत हो गई है। उन्होंने रेणुका की भर्त्सना की। तब तक उनके पुत्र भी वहाँ पहुँच गए थे।

जमदग्नि ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रुमण्वान को बुलाया और उसे अपनी माँ का वध करने के लिए कहा। रुमण्वान ने अस्वीकार कर दिया। जमदग्नि ने एक-एक कर अपने दूसरे, तीसरे और चौथे पुत्र से भी अपनी माँ का वध करने के लिए कहा, किन्तु सभी ने अपने ज्येष्ठ भ्राता की तरह अस्वीकार कर दिया। क्रोधित होकर जमदग्नि ने अपने चारों पुत्रों को शाप दिया कि वे जड़ बुद्धि हो जाएँ।

जब परशुराम को बुलाया गया, तो वे आगे आए और उन्होंने अपनी माँ का वध कर दिया। किन्तु वे अपने इस अविचारपूर्ण बीभत्स कृत्य के दुष्परिणाम के बारे में सोचकर मूर्च्छित हो गए। उनके भ्रातृगण भी यह देखकर निस्तब्ध हो गए।

जमदग्नि की क्रोधाग्नि शान्त हुई। उन्होंने परशुराम को सचेतन किया और उनकी आज्ञाकारिता के लिए वरदान माँगने को कहा। परशुराम ने अपनी माता को पुनरुज्जीवित करने और अपने भाइयों के शापमुक्त होने का वरदान माँगा। इसके अतिरिक्त परशुराम को अजेय होने का वरदान भी प्राप्त हुआ। ऋषि-महात्मा चाहते हैं कि हमारा आध्यात्मिक स्तर सदैव उच्च रहे। हमारी थोड़ी-सी भी असावधानी के लिए वे अप्रसन्न हो जाते हैं और हमें सबक सिखाने के लिए दण्ड का विधान करते हैं। किन्तु अपनी करुणा से द्रवित होकर वे क्षमादान भी करते हैं।

जमदग्नि के पिता महर्षि ऋचीक के पास भगवान विष्णु का धनुष था। पुराणों में वर्णन आता है कि देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने भगवान शिव और विष्णु के लिए दो धनुषों का निर्माण किया था। दोनों धनुषों में से कौन-सा उत्तम धनुष है, यह जानने के लिए देवताओं ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। जब दोनों धनुषों की प्रत्यंचा के घोष से सम्पूर्ण जगत भय से आतंकित हो गया, तब देवताओं ने विराम के लिए कहा। बाद में, भगवान शिव ने अपना धनुष जनक को दे दिया। श्रीराम ने सीताजी को प्राप्त करने के लिए इसी धनुष का भंजन किया था। भगवान विष्णु ने अपना धनुष महर्षि ऋचीक को दिया और उन्होंने अपने पुत्र जमदग्नि को दिया।

जमदग्नि एकबार सूर्यदेवता पर कुपित हो गए, क्योंकि उनका ताप अधिक हो गया था। उन्होंने सूर्यदेवता पर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। लम्बे समय तक चल रहे इस युद्ध में रेणुका शस्त्र-संचालन का कार्य कर रही थीं। जमदग्नि की दयनीय अवस्था देखकर और उनका परिहास करने के लिए सूर्यदेवता ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। ब्राह्मण के वेश में सूर्यदेवता ने उन्हें पादुका और छत्र भेंट किया और इस प्रकार इन वस्तुओं को उपहार के रूप में देने का प्रचलन हुआ।

एकबार कार्तवीर्यार्जुन जमदग्नि के आश्रम पधारे। तब रेणुका आश्रम में थीं। यद्यपि उन्होंने उनका उचित आदर-आतिथ्य किया, तो भी राजा बलपूर्वक उनकी कामधेनु ले गए। परशुराम को जब इस बारे में ज्ञात हुआ, तो उन्होंने विष्णु प्रदत्त धनुष के द्वारा राजा का वध किया और उनकी बड़ी सेना को तितर-बितर कर दिया। कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए जमदग्नि का वध कर दिया। **(क्रमशः)**

इस ऐहिक जगत में अथवा आध्यात्मिक जगत में भय ही पतन तथा पाप का कारण है । भय से ही दुख होता है, यही मृत्यु का कारण है तथा इसी के कारण सारी बुराई होती है और भय होता क्यों है? – आत्मस्वरूप के अज्ञान के कारण । हम सभी सम्राटों के भी सम्राट के अधिकारी हैं ।

– स्वामी विवेकानन्द

एक कंगालिन बुढ़िया का महादान

गोहाटी के रामकृष्ण मिशन आश्रम की नवीन भूमि की खुदाई और मन्दिर निर्माण का कार्य चल रहा था। स्वामी इज्यानन्दजी महाराज आश्रम के अध्यक्ष थे। वे स्वामी विज्ञानानन्द महाराज जी के शिष्य थे।

भक्तलोग आश्रम हेतु दान संग्रह करने के लिए आसपास के विभिन्न स्थानों में जाते थे। इसी प्रकार एकदिन कुछ भक्त गोहाटी आश्रम से ३० कि.मी. दूर स्थित पलाशबाड़ी गाँव में गए। पलाशबाड़ी ऐसे तो गाँव था, किन्तु व्यापार की दृष्टि से एक अच्छा केन्द्र था। भक्तलोग घूमते-घूमते थक गए थे और उन्हें प्यास लगी थी। वे एक झोपड़ी के सामने गए और दरवाजा खटखटाया। बहुत बार खटखटाने के बाद दरवाजा खुला। सामने लगभग अस्सी वर्ष की फटे-पुराने वस्त्र पहने हुई एक वृद्धा थीं। भक्तों ने इशारे से बताया कि उन्हें पानी चाहिए। बूढ़ी माई ने टूटा हुआ पत्थर का ग्लास और पीतल की गगरी लाकर भक्तों को पानी पिलाया। उन्होंने भक्तों को एक फटी-पुरानी बोरी बैठने के लिए दी।

उन बूढ़ी माई का कोई नहीं था। भिक्षावृत्ति ही उनका एकमात्र सम्बल था। भक्तों ने उन्हें कुछ देना चाहा, पर बुढ़िया ने कुछ नहीं लिया। कुछ देर बाद वे एक फटा-पुराना कागज का टुकड़ा लाकर उसमें एक फोटो दिखाने लगीं। भक्तों ने देखा कि वह श्रीरामकृष्ण देव का फोटो है। उन्होंने पूछा, 'क्या आप इन्हें जानती हैं?' वे यह नहीं जानती थीं कि यह चित्र किनका है, किन्तु प्रतिदिन उस फटे-पुराने कागज के टुकड़े में श्रीरामकृष्ण देव का चित्र देखकर भक्तिभाव से भूमिष्ठ होकर प्रणाम करती थीं। उनका यह ज्वलन्त विश्वास था कि ये साक्षात् भगवान हैं। इस चित्र को प्रणाम कर वे प्रतिदिन भिक्षा के लिए जाती थीं। भिक्षा के बाद घर में स्नानोपरान्त वे अपनी भिक्षा की झोली इस चित्र के सामने रख देती थीं और भिक्षान्न से अपनी क्षुधा शान्त करती थीं। यही उन बूढ़ी माता की नित्य दिनचर्या थी।

वृद्धा की झोपड़ी ब्रह्मपुत्र नदी के पास थी और आँधी-तूफान आने पर हमेशा उस झोपड़ी के उड़ जाने की सम्भावना रहती थी। उन दो-तीन भक्तों ने उनसे पूछा कि आँधी-बारिश के दिनों में क्या उन्हें डर नहीं लगता है? वृद्धा ने कहा कि वे भगवान उनकी रक्षा करते हैं और आँधी-तूफान न जाने कहाँ चला जाता है। भक्तलोगों की तो आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही।

उन्होंने आश्रम जाकर पूरी घटना स्वामी इज्यानन्द महाराज को सुनाई। महाराज भी उन वृद्धा के बारे में सुनकर भावाभिभूत हो गए। एक दिन वे कुछ भक्तों के साथ वृद्धा से मिलने गए। झोपड़ी का दरवाजा बन्द था। उन्होंने सोचा कि बुढ़िया भिक्षा माँगने गई होगी, इसलिए बाहर बैठ गए। लगभग दस मिनट बीते होंगे और बुढ़िया अपनी झोपड़ी पहुँची। उन्होंने जैसे ही महाराज को देखा, तो उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। महाराज को प्रणाम कर वे बोलीं, 'बाबा ! तुमसे तो मेरा बहुत दिनों का परिचय है, इतने दिनों बाद क्यों आए?'' महाराज और भक्त एक-दूसरे को आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। वृद्धा ने एकबार भी उन लोगों से नहीं पूछा कि आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं, इत्यादि।

महाराज ने वह फोटो देखना चाहा। वृद्धा महाराज का हाथ पकड़कर भीतर ले गईं और वह फोटो दिखाया। महाराज ने उनसे पूछा, 'क्या आपको पता है कि जिस फोटो की आप प्रतिदिन पूजा करती हैं, वह किसका है?' वृद्धा ने पहले के ही समान कहा कि ये भगवान हैं, जो सदा-सर्वदा उनकी रक्षा करते हैं।

महाराज ने उन वृद्धा से लगभग ४५ मिनट बातचीत की। मजे की बात तो यह कि कोई किसी की बात समझ नहीं पा रहा था, किन्तु बात चल रही थी। इसके बाद महाराज ने अपने थैले से प्रसादी वस्त्र, कम्बल, फल-मिठाई बूढ़ी माई को दिया और संक्षिप्त में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के बारे में बताया। महाराज ने उन्हें यह भी बताया कि गोहाटी आश्रम में श्रीरामकृष्ण देव के नवीन मन्दिर का निर्माण-कार्य चल रहा है और मन्दिर के प्रतिष्ठा उत्सव में वे उन्हें ले जाएँगे। भक्तों को दिखाकर वे वृद्धा से बोले, 'ये लोग उसी कार्य के लिए दान-संग्रह का कार्य करते हैं, तुमको भी आश्रम आना होगा।'

इसके बाद जो हुआ, वह अविश्वसनीय था। वृद्धा अपनी झोपड़ी में गई और फटी-पुरानी पोटली महाराज के सामने रखकर बोली कि यह आपके मन्दिर के कार्य के लिए है।

शेष भाग पृष्ठ १४३ पर

आदर्श मौन की अवस्था में उत्कृष्ट सृजन

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

मौन साधना का अंग है। साधना में उपवास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपवास जहाँ भौतिक शरीर की शुद्धि का साधन है वहीं मौन मन की शुद्धि के लिये अनिवार्य है। मौन वस्तुत: मानसिक उपवास ही है। मौन की अवस्था में हम अपने मुख, जिह्वा और वाणी पर नियंत्रण कर सकते हैं। लेकिन इसके बावजूद हम बाह्य जगत से जुड़े रहते हैं। आँखों से देख सकते हैं, कानों से सुन सकते हैं, इशारों तथा भाव-भंगिमाओं द्वारा अपनी बात दूसरों को समझा सकते हैं तथा दूसरों की बातों को ग्रहण कर सकते हैं। किसी भी व्यक्ति, वस्तु या स्थिति को देख कर हमारे मन में विचार उत्पन्न हो सकते हैं और हम बोलने पर भी विवश हो सकते हैं। अत: आदर्श मौन का अनुपालन अनिवार्य है।

बसन्त के प्रारम्भ में कड़कड़ाती शीत ऋतु में समस्त प्रकृति के साथ धरती भी पूर्णत: शान्त-स्थिर और मौन होकर ठिठुरने लगती है। उसकी शान्ति, स्थिरता अर्थात् मौन का ही परिणाम है कि समस्त प्रकृति न केवल हरीतिमा से ओतप्रोत हो जाती है, अपितु विविधवर्णी पत्रावली व पुष्पावली के माध्यम से उसके गर्भ से इन्द्रधनुषी रंगों के फव्वारे-से छूटने लगते हैं। मनुष्य भी जब तक शान्त-स्थिर और प्रकृतिस्थ नहीं होता, मौन का आश्रय नहीं लेता, उसके द्वारा कुछ नया, कुछ उपयोगी, कुछ आकर्षक सृजन संभव नहीं होता। किसी भी प्रकार का सकारात्मक सृजन आदर्श मौन अर्थात् वास्तविक आंतरिक मौन द्वारा ही संभव है। इसी स्थिति में उपयोगी सकारात्मक संकल्प लिए जा सकते हैं। इसमें ही लिये गए संकल्प पूर्ण होते हैं।

आदर्श मौन से ही बाह्यविक्षेप दूर होता है, विचारों के प्रवाह में कमी आती है। यह वह स्थिति है, जहाँ हम वाणी और अन्य ज्ञानेंद्रियों के कार्यकलापों को भी नियंत्रित कर लेते हैं, जिससे अपने आस-पास के वातावरण के प्रति निरपेक्षता अथवा तटस्थता आ जाती है। शब्द के साथ-साथ रूप, रस, गंध तथा स्पर्श से विमुख होना ही आदर्श मौन है। आँखें बंद करने का तो और भी महत्त्व है। आँखें बंद करने का अर्थ है मस्तिष्क की तरंगों की आवृत्ति में कमी, जो हमें मन की गहराई में पहुँचने का अवसर प्रदान करती है।

आदर्श मौन आध्यात्मिक विकास का उद्‌गम है। जब हम देखते हैं, बोलते हैं अथवा अन्य किसी भी दिशा में गतिशील होते हैं, तो ऊर्जा का बहाव अंदर से बाहर की ओर होता है अर्थात् हमारी ऊर्जा में निरन्तर कमी होती रहती है। इसके विपरीत मौन की स्थिति में, न देखने की स्थिति में, निश्चलता की स्थिति में ऊर्जा प्रवाह बाहर से अंदर की ओर होता है।

आदर्श मौन से ध्यान सुगम हो जाता है। इसके बाद मन को किसी एक ओर केन्द्रित करना अथवा इच्छित दिशा में ले जाना ही ध्यान है। योग के आठ अंगों, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि में ध्यान से पहले की अवस्थाएँ हैं, 'प्रत्याहार' तथा 'धारणा'। प्रत्याहार' है ज्ञानेंद्रियों पर नियंत्रण – बाह्य जगत से सम्बन्ध तोड़ना, ताकि अन्तर्यात्रा सम्भव हो सके। 'धारणा' है चित्त का केन्द्रीकरण और यहीं से प्रारम्भ होती है ध्यान की यात्रा। इस प्रकार मौन की विभिन्न स्थितियाँ योग साधना के मार्ग के विभिन्न सोपान हैं।

मौन वह तत्त्व है, जिसमें महान घटनाएँ विचार रूप में स्वयं को निर्मित करती हैं। संसार के महान आविष्कार, महान घटनाओं की शुरुआत, महान योजनाओं की रूपरेखा सबसे पहले किसी न किसी के मन में बनती है और बाद में क्रियान्वित होती हैं। शान्त मन में उत्पन्न विचार प्रभावशाली होते हैं। अशांत, उद्वेलित मन में कोई भी सकारात्मक विचार या महान योजना न तो उत्पन्न होगी और न ही पूर्ण। तभी तो कहा गया है – मौन स्वर्णिम सुयोग है – साइलेंस इज गोल्ड।

मौन में श्वास के आवागमन पर ध्यान केन्द्रित करने से मन के अवचेतन भाग में दबे विकार निकल जायेंगे, जो अनेक व्याधियों के कारण बनते हैं।

जैसे कुछ समय खाली पड़ी रहने के उपरान्त धरती पुन: उर्वरा हो जाती है, अच्छी फसलें पैदा करने में सक्षम हो जाती है। यही स्थिति मन की भी है। यदि आप चाहते हैं कि मन रूपी जमीन की उर्वरता का आरोग्य तथा भौतिक इच्छापूर्ति के लिए अधिकाधिक लाभ हमें मिल सके, तो इसके लिये मौन नामक तत्त्व को जीवन में महत्त्व दीजिए।

OOO

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (१५)

स्वामी भास्करानन्द

अनुवाद : ब्र. चिदात्मचैतन्य

वह व्यक्ति जिसने सुअवसर गँवाया

१९५८ ई. में मैंने रामकृष्ण संघ में प्रवेश लिया। लगभग चार महीने के बाद सारगाछी आश्रम में स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज का मुझे दर्शन का अवसर मिला। शिलाँग आश्रम से एक अन्य संन्यासी भी मेरे साथ आये थे।

स्वामी प्रेमेशानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज (१८८४-१९६७) श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। जब हम उनके दर्शन करने के लिए गये, तब वे सारगाछी आश्रम के अध्यक्ष थे और उनकी उम्र लगभग सत्तर वर्ष थी। आश्रम में पहुँचने के बाद हम सीधे उनके कमरे में गये। महाराज अपने बिस्तर पर बैठे थे। वहाँ बहुत से भक्तगण भी थे। प्रणाम करने के बाद उन्होंने स्नेहपूर्वक हमारा कुशल-मंगल पूछा। महाराज ने मुझसे पूछा, ''तुम्हारा क्या नाम है?''

मैंने उत्तर दिया, – ''मेरा नाम ब्रह्मचारी ज... है।''

इसके बाद उन्होंने पूछा, – ''रामकृष्ण संघ में प्रवेश करने के पहले तुम्हारा क्या नाम था?''

साधारणत: संन्यासी अपने पूर्वाश्रम का नाम नहीं बताते। इसलिए मैं संकोच कर रहा था। यह देखकर महाराज ने कहा, ''तुम्हें संकोच करने की जरूरत नहीं है। मैं वृद्ध साधु हूँ ! मुझे पूर्वाश्रम का नाम बताने से तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी।''

इसके बाद मैंने उनको अपना पूर्वाश्रम का पूरा नाम बताया। मेरा पारिवारिक कुलनाम थोड़ा-सा असाधारण था। ऐसा कुलनाम बहुत कम परिवारों का होता था। मैं जब महाराज के कमरे से बाहर आया तो, वहाँ बैठे हुये एक भक्त भी मेरे पीछे-पीछे आये। उन्होंने मुझे एक ओर बुलाकर कहा कि वे एक डॉक्टर हैं और कोलकाता से आये हैं। उसके बाद उन्होंने कहा, ''मेरे एक परिचित थे, उनका भी कुलनाम वही था, जो आपका है। चिकित्सा-महाविद्यालय में वे हमारे वरिष्ठ थे। मैं अभी भी उनका बहुत कृतज्ञ हूँ, क्योंकि विद्यार्थी-जीवन में मुझे उनसे बहुत सहायता मिली थी। मुझे लगता है, आपका उनसे कोई सम्बन्ध हो।''

उन्होंने मुझे उन व्यक्ति का नाम बताया। वास्तव में वे मेरे बड़े भाई थे, जो असम में पेथोलॉजिस्ट थे। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं उनका ही छोटा भाई हूँ, तो यह सुनकर वे बहुत आनन्दित हुए।

उन्होंने अत्यन्त भावविह्वलता से कहा, ''जब मैं चिकित्सा-महाविद्यालय में था, तो वे मुझे अपने छोटे भाई जैसा मानते थे। तुम भी मेरे छोटे भाई के समान हो। तुम्हारा शुभचिन्तक होने के नाते मैं तुमसे एक निवेदन करता हूँ – 'तुम मुझे वचन दो कि तुम कभी भी संन्यास जीवन का त्याग नहीं करोगे। इससे श्रेष्ठतर जीवन कोई भी नहीं है।''

''अभी मैं एक गृहस्थ हूँ। मेरी धर्मपत्नी और एक पुत्र है। लेकिन बहुत वर्ष पहले मैं रामकृष्ण संघ में ब्रह्मचारी था। मेडिकल डिग्री प्राप्त करने के बाद मैं रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुआ। लेकिन कुछ दिनों बाद मैं साधुओं के दोष देखने लगा। महासचिव महाराज मेरा स्नेहपूर्वक ध्यान रखते थे। उन्होंने मुझे अन्य तीन-चार आश्रमों में रहने का अवसर दिया। लेकिन मैं कहीं भी सामंजस्य नहीं बैठा सका। तब एक दिन सुबह चुपचाप मैं संघ छोड़कर घर चला गया।

''मेरे पिताजी एक धनी व्यापारी थे। मेरे घर वापस आने से वे बहुत प्रसन्न हुये। कहीं मेरा मन पुन: बदल न जाय, उन्होंने तुरन्त मेरा विवाह कर दिया। अब मैं एक गृहस्थ हूँ और मुझे लगता है कि मैंने आध्यात्मिक जीवन का एक महान सुअवसर खो दिया। संन्यासी का जीवन एक महान जीवन है। पवित्रता, सत्य और अन्य सद्गुणों को आत्मासात् करने का यह मार्ग है, जो हमें सीधे ईश्वर की ओर ले जाता है। जबकि गृहस्थ का जीवन टेढ़ा-मेढ़ा, संकटापन्न, त्रुटि और प्रलोभनों से भरा हुआ है। एक गृहस्थ के लिए आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना कितना कठिन है, यह मैं जानता हूँ।

''मैं संन्यास-जीवन के लिये योग्य नहीं था, इसलिये सामंजस्य नहीं कर सका। मैं संन्यासियों में मन-गढ़न्त दोष देखता था, क्योंकि गृहस्थ-जीवन का भोग करने की मुझमें सुप्त लालसा थी । संघ छोड़ने को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिये मेरे मन में संघ और संन्यासियों के प्रति कल्पनात्मक नकारात्मक विचार उत्पन्न हुये।

अब मैं इन बातों को अच्छी तरह समझ पा रहा हूँ। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है। मैंने अपने जीवन का

सर्वश्रेष्ठ अवसर खो दिया। मैं मन की शान्ति के लिए, कार्य के बीच में स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज से सत्संग करने आता हूँ। जब कभी मुझे अवकाश मिलता है, तो मैं कोलकाता से कुछ दिन यहाँ आकर स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के साथ सत्संग करने का प्रयास करता हूँ।

इसके बाद कुछ क्षण रुककर वे पुन: कहने लगे, ''पारिवारिक जीवन बहुत बड़ा बन्धन है। अभी कोलकाता से एक मित्र भी मेरे साथ यहाँ आया था। वह मुझसे स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज की साधुता के सम्बन्ध में सुन चुका था। इसलिये वह मेरे साथ सारगाछी की इस यात्रा में आना चाहता था। वह यहाँ तीन-चार दिन रहकर मेरे साथ कोलकाता वापस जाने वाला था। लेकिन यहाँ एक रात रहकर ही वह वापस चला गया। उसने मुझे कहा कि उसे अपनी पत्नी की इतनी याद आ रही है कि वह और अधिक दिन यहाँ नहीं रह सकता।'' थोड़ी देर रुककर उन्होंने कहा, ''मैंने तुम्हें कहा था कि मेरा एक पुत्र है। वह अभी बहुत छोटा है। मैं चाहता हूँ कि वह बड़ा होकर साधु बने।''

सारगाछी से वापस जाने के पहले उन चिकित्सक ने अपनी विनती का पुन: स्मरण कराया। लगभग पन्द्रह वर्ष के बाद कोलकाता शहर में मैं प्रवचन देने गया था। मैंने उन चिकित्सक को श्रोताओं में बैठे हुए देखा। वे पहली पंक्ति में बैठे थे, लेकिन मुझे पहचान न सके। प्रवचन के तुरन्त बाद वे सभागृह से चले गये। उसके बाद मेरी उनसे कभी भेंट नहीं हुई।

गुरुभक्ति

स्वामी आत्मानन्द

स्वामी आत्मानन्द जी (१८६८-१९२३) स्वामी विवेकानन्द जी के शिष्य थे। वे 'शुकुल महाराज' के नाम से परिचित थे। यह घटना उनके बारे में है। वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे तथा आदर्श संन्यासी भी थे, इसलिये रामकृष्ण संघ के सभी कनिष्ठ साधु उनकी श्रद्धा करते थे। उनका जीवन तपोमय था। उन्होंने जीवन-भर अति साधारण वस्त्र और कठोर शय्या का उपयोग किया। वे एक कम्बल, एक चादर, एक तकिया और एक मच्छरदानी का ही उपयोग करते थे। वे चाहे जिस किसी भी आश्रम में क्यों न रहें, अपने कमरे में हमेशा अपने बिस्तर के अतिरिक्त एक दूसरा बिस्तर भी सजा कर रखते थे। इस दूसरे बिस्तर का वे स्वयं और किसी दूसरे को उपयोग नहीं करने देते थे। ऐसा वे आजीवन करते रहे।

वे प्रतिदिन सुबह बड़ी सावधानी के साथ उस बिस्तर को व्यवस्थित करते थे। उस बिस्तर पर एक अच्छा गद्दा, अच्छा तकिया, साफ-सुथरी चादर और एक बहुत सुन्दर कम्बल रहता था। साथ में एक मच्छरदानी भी थी। आश्रम के अन्य साधु यह सोचकर आश्चर्यचकित होते थे कि यह बिस्तर महाराज जी क्यों और किसके लिए सजाकर रखते हैं? अन्तत: एक साधु ने इस विषय में स्वामी आत्मानन्द महाराज से पूछा। महाराज ने कहा, ''जब मैं बेलूड़ मठ में था, तब स्वामीजी (स्वामी विवेकानन्द) कभी-कभी मेरे कमरे में आते थे और मेरे बिस्तर पर लेट जाया करते थे। उनकी महासमाधि के बाद एक दिन मैंने उन्हें स्वप्न में देखा कि वे मेरे कमरे में आये और मेरे बिस्तर पर लेट गये। इसलिए यह दूसरा बिस्तर मैं उनके लिए सजाकर कर रखता हूँ।'' यह कहते हुए वे भावाविह्वल हो गये और उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की असाधारण गुरुभक्ति से सभी साधु गद्‌गद हो गये।

आज्ञापालन

स्वामी विज्ञानानन्द

स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज (१८६८-१९३८) श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। उनके पास हरेन्द्र नारायण नामक एक नवयुवक मन्त्रदीक्षा के लिए आया। दीक्षा के बाद महाराज ने उससे कहा, ''अबसे तुम सत्य का पालन करोगे।'' वह नवयुवक घर गया। लेकिन उसे लगा कि पारिवारिक जीवन में सत्य का पालन करना अत्यधिक कठिन है। वह अविवाहित था और अपने माता-पिता के साथ कोलकाता के निकट ही एक छाटे-से शहर में रहता था। उसे लगा कि संन्यासी बनने से आसानी से वह सत्य का पालन कर सकेगा। इसलिए घर-बार छोड़कर वह ब्रह्मचारी हरेन्द्र नारायण नाम से (रामकृष्ण मिशन के बाहर) साधु बन गया। तदनन्तर पश्चिम बंगाल के कूच बिहार नामक स्थान में उसने अपना आश्रम शुरू किया। यह घटना १९५९ ई. में शिलाँग आश्रम में मैंने स्वयं ब्रह्मचारी हरेन्द्र नारायण से सुनी थी। **(क्रमश:)**

संशयात्मा विनश्यति

स्वामी सत्यरूपानन्द

जीवन में जब तक कुछ अनुभूति नहीं होती, तब तक साधना में लगे रहना चाहिए। साधना की नकारात्मक और सकारात्मक प्रवृत्ति होती है। कुछ भी हो जाय, हम साधना को नहीं छोड़ेंगे। हम लोग कच्चे मन पर साधना का महल बसा रहे हैं, इसलिये बहुत सजग रहना पड़ेगा। आध्यात्मिक जीवन में पूरे जीवन के व्यवहार में परिवर्तन होना चाहिए। अपने गुरु, अपने इष्ट, अपना मंत्र और साधना में बहुत निष्ठा रखनी चाहिए। श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् – श्रद्धावान को ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए हमको मन्त्र और अपने इष्ट पर श्रद्धा रखनी चाहिए। जिस व्यक्ति को संदेह रहता है, उसका विनाश हो जाता है – संशयात्मा विनश्यति। प्रयत्न और निष्ठा रहने से सभी काम सफल होते हैं। यदि किसी कारणवश असफल हो गये, तो पुन:-पुन: प्रयत्न करो। जैसा प्रयत्न करना चाहिए, वैसा नहीं हुआ, तभी असफल होते हैं। इसलिये फिर से प्रयास करो।

आध्यात्मिक जीवन में सौदेबाजी नहीं करनी चाहिए। यदि हममें दोष हैं, तो हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये उन दोषों को दूर करने के लिये ठाकुरजी से प्रार्थना करनी चाहिए। प्रयत्न और परिश्रम करने से कार्य सिद्ध होते हैं। हमें अपनी साधना के साथ-साथ आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए। साधक को अपना जीवन, आचरण भी शुद्ध रखना चाहिये, केवल मंत्र-जप करना पर्याप्त नहीं है।

हमारे मन में भूतकाल की स्मृति और भविष्यकाल के विचार सदा आते रहते हैं। इससे हमारा मन भगवान में एकाग्र नहीं हो पाता। अत: जप-ध्यान के समय आने वाले विचारों को भगवान में विलीन कर देना चाहिए। कुविचार न आएँ, इसके लिये भगवान से प्रार्थना और नाम-जप करना चाहिए।

बहुत स्वार्थी और आलसी मनुष्य अपने लिये भी कुछ करना नहीं चाहता। उसे लगता है कि किसी साधु से, गुरु से मिल लेगा, तो उसे कुछ करना नहीं पड़ेगा। पर वे तो सिर्फ मार्गदर्शन करेंगे, करना तो अपने को है। आध्यात्मिक साधना में सभी तुरन्त फल चाहते हैं, पर परिश्रम कोई नहीं करता। परिश्रम किये बिना कुछ नहीं मिलेगा। हमने पहले बुरे कर्म किये हैं, इसलिए भगवान में मन नहीं लगता। इसलिए भगवान का नाम जप करके बाधक संस्कारों को दूर करना है। जैसे दीपक का काँच काला हो जाता है, वैसे ही हमारा मन भी बुरे संस्कारों के कारण काला हो गया है। उसको साफ करने के लिए भगवान का नाम-जप और प्रार्थना करनी चाहिये। हमेशा सोचना चाहिये कि मनुष्य यंत्र है, प्रभु उसके संचालक हैं, वे ही हमसे कर्म करा लेते हैं। कुशल व्यक्ति परमात्मा के लिये कार्य करके अपने कर्म-पाश, नाम-यश को काट डालते हैं। सब कुछ चला जाता है, केवल भगवान की सत्ता ही रहती है। देह में रहकर भी विदेही रहना, यही जीवन का रहस्य है। हमारा जीवन भगवान की उपलब्धियों के सिवाय किसी भी काम के लिये नहीं है। मैं कर्ता हूँ, यह भ्रान्ति मात्र है। संसार में सुख-दुख तो लगा ही रहता है, इसलिये उसे दूर करने के लिए गुरु का दिया हुआ मंत्र-जप करना चाहिये और भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान पर पूर्ण विश्वास करना चाहिए।

हमको भगवान ने बुद्धि दी है, हमें विवेक दिया है, तो हमें अपनी बुद्धि और विवेक से अच्छा काम तत्काल शुरू कर देना चाहिये, जिससे हममें अच्छे संस्कार बनें। अच्छे संस्कार हमें सत्कर्म और ईश्वर की ओर अग्रसर करते हैं।

मृत्यु पर्यन्त सत्कर्म, सत्-चिन्तन करते रहें। जब मन में बुरे विचार आवें, तो भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान मेरी बुद्धि को ठीक कर दो। अनुकूलता और प्रतिकूलता के बीच में मन को देखना चाहिए कि यह कहाँ जा रहा है और क्या चाहता है? मन को सम्पूर्ण वासनाओं, इच्छाओं से हटाकर उसे भगवान में लगाना चाहिये। अपने मन का निरीक्षण करते रहना चाहिये।

ईश्वर ने हमें शक्ति दी है कि हम कायिक, मानसिक और वाचिक किसी भी प्रकार के दोषों से बचें। इन्द्रिय-निग्रह से हमारा कल्याण होगा। हमारा मन भगवान में लगेगा। OO

हिन्दू धर्म और संगठन

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

विश्व में हिन्दू धर्म का विकास अत्यन्त सुसम्बद्ध और उत्कृष्टतम रूप से हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि यह विकासशील है, किन्तु कठिनाई यह है कि यह संगठित नहीं है, यह यन्त्रवत् जड़ नहीं है, बल्कि वृक्ष के समान वर्धनशील है। आज के युग में पूरा संसार यन्त्र के कार्यो गणना, निर्दोषता आदि गुणों के द्वारा उसे सर्वोपरि मानता है। यद्यपि यन्त्रों के द्वारा अधिक स्थायित्व सम्भव है, तो भी इनमें कुछ अभाव विद्यमान रहते हैं। हिन्दू धर्म रूपी वृक्ष के फल अद्वितीय हैं, किन्तु इनके द्वारा उन वांछनीय वस्तुओं को प्राप्त करना इतना सहज नहीं हैं। प्राप्तव्य उद्देश्य पर दृष्टि रखकर योजनाओं को निश्चित करना होगा। उदाहरण के तौर पर, विश्व के सभी धर्ममतों में कदाचित हमारा ही एकमात्र धर्म है, जिसका सत्य के साथ किसी भी प्रकार का कोई द्वन्द्व नहीं है। इसके अन्तर्गत जिज्ञासु मन को अनन्त अज्ञानमय विश्व के अनुसन्धान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है, दार्शनिक को अपने सिद्धान्त निरूपण करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। सामान्य धार्मिक व्यक्ति अपने से अत्युच्च सिद्धान्तों पर निर्णय देने की चेष्टा नहीं करते। यद्यपि हिन्दूधर्म के विषय में यह सब सत्य है, तथापि यह जानकारी भी आवश्यक है कि वह अपनी सन्तानों को सर्वोच्च वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कराने हेतु क्या कर रहा है अथवा विद्या और समाज-सेवा के क्षेत्र में अपने नागरिकों को प्रोत्साहित करने के लिए वह क्या कर रहा है?

यद्यपि इन सभी क्षेत्रों में होने वाले प्रयत्नों के प्रति हिन्दू धर्म में किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है, किन्तु हमारे ये प्रयत्न सजगता, ऊर्जा और सार्वभौमिकता से पूर्ण होने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शित प्रगतिशील हिन्दूधर्म (Aggresive Hinduism) ही इन प्रयत्नों में नई शक्ति का संचार कर सकता है। केवल धर्म-प्रचारकों को अन्य राष्ट्रों में भेजने से सन्तुष्ट न होकर सामाजिक और आत्म-विकास के द्वारा हमें अपने धर्म को प्रगतिशील बनाना होगा। नए लोगों को अपने मत में स्वीकार करने से ही नहीं, किन्तु आध्यात्मिक और कर्मठता द्वारा अपने धर्म को प्रगतिशील बनाना होगा। हमें चाहिए कि हम धर्म को प्रबुद्ध आत्मगौरव-सम्पन्न जनशक्ति से जोड़ें, जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति का योगदान हो। शिक्षा के क्षेत्र में जातिभेद अब पुरानी बात हो गई है। प्रतिभावान व्यक्ति के लिए बौद्धिक क्षेत्र खुला हुआ है। यह नियम हमें उत्साह और निर्भीकतापूर्वक स्वीकार करना होगा। जैसे विद्यालय के द्वार सबके लिए खुले हैं, उसी प्रकार सामाजिक सेवाएँ भी सबके लिए होनी चाहिए। समर्पित और उद्यमी लोगों को चाहिए कि वे महाविद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय, नारी-आश्रम खोलें और इस विषय में समाज-सेवक की जाति इत्यादि न पूछा जाए। जैसे एक दार्शनिक ज्ञान-प्राप्ति के बाद ऋषि हो जाता है, ठीक उसी प्रकार, एक समाज-सेवक अपने समर्पण भाव से सन्त बन जाता है।

संगठित रूप से एकमत होकर किया जानेवाला कार्य सरल और उन्नत होता है, न कि भवाटवी में घूमने वाले और विचारों के झँझाल में फँसे एकाकी व्यक्ति का। यही कारण है कि बड़े-बड़े सुधारवादी आन्दोलनों की सफलता में छोटे-छोटे एकध्येय वाले संगठित सम्प्रदायों का मूल योगदान रहता है। उदाहरण के तौर पर ब्राह्म समाज ने हिन्दूधर्म की अनेक विकट समस्याओं के विरुद्ध अभियान चलाया और उसमें उन्हें महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। एक छोटा-सा धार्मिक संगठन अथवा संस्था एक कार्यकर्ता के लिए आधार और आश्रय-स्थान बन जाता है। यह संगठन उसे उत्तरदायित्व देकर कर्मक्षेत्र में भेजता है, उसकी सफलता पर प्रसन्न होता है, लौटने पर उसे पुरस्कृत करता है अथवा अन्तिम समय में उसे सहायता भी प्रदान करता है। इस प्रकार के भावप्रधान संगठन के बिना कार्यकर्ताओं की शक्ति और उत्साह को बनाए रखना कठिन है। अपने छोटे-से संगठन की प्रशंसा और प्रसन्नता हम सभी को अच्छी लगती है और मार्ग की उन अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देती है, जिनका सामना करने
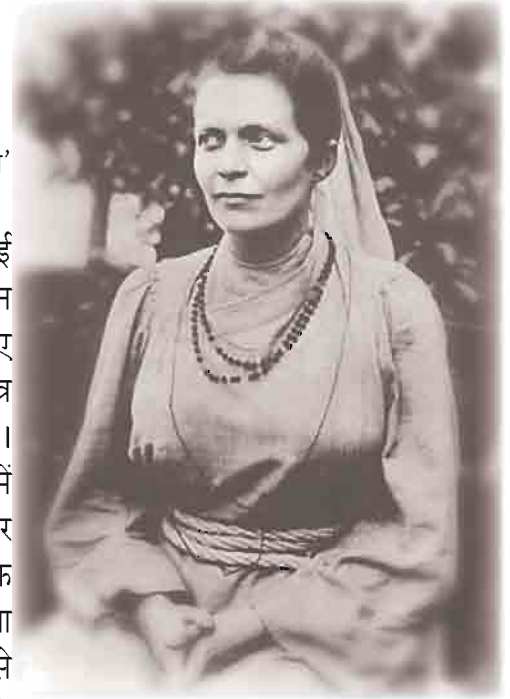
का हम अकेले सोच भी नहीं सकते। आध्यात्मिक स्तर पर नेति, नेति कहते हुए व्यक्ति कितना ही ऊपर क्यों न उठ जाए, किन्तु उसे सेवाकार्य का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

सामाजिक संगठन के रूप में हमें अपनी समस्याओं का हल करना होगा। कोई भी व्यक्ति यह नहीं सोचे कि वह अकेला ही देवदूत के रूप में पूरे जगत को हिला देगा। इस जगत में जो कोई भी कार्य हुआ है, चाहे वह आविष्कार हो, काव्य-रचना ही क्यों न हो, यहाँ तक कि व्यक्ति का प्रत्येक स्वप्न भी एक सामाजिक उपलब्धि है। समाज ने उसमें योगदान दिया है और उसका फल भी उसे प्राप्त होगा। जिस समाज-सेवक को कार्यभार सौंपा गया है, वह ऐसा न माने कि उसके बिना कार्य चल नहीं सकता। दो-तीन लोग ऐसे होने चाहिए, जो मानव-सेवा हेतु प्रत्येक उपक्रम में मिल-जुलकर एकसूत्र में कार्य कर सकें। वे अपने विद्यालय के मित्र भी हो सकते हैं। वे किसी एक गुरु के शिष्य भी हो सकते हैं। वे एक गाँव के रहनेवाले भी हो सकते हैं। वे किसी एक ही कारखाने में काम करनेवाले कारीगर भी हो सकते हैं। उन्हें एक साथ करनेवाला कोई भी सम्बन्ध क्यों न हो, यदि उन्हें सफलता चाहिए, तो उनके उद्देश्य समान होने चाहिए और उनके प्रयत्नों में आपसी सहयोग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो सच्चे निष्ठावान लोग इसके मूल में हैं, उनके बीच प्रेम का अटूट बन्धन होना चाहिए।

स्वैच्छिक मण्डली बनाकर संगठित रूप से दायित्व स्वीकार करना, यह हिन्दूधर्म में समाज सेवा करने की प्रारम्भिक सीढ़ी है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक कार्य समाज की सार्वजनिक गतिविधियों पर निर्भर करता है। संगठन के कार्यकर्ताओं को सेवक के रूप में कार्य करना है, न कि दूसरों के शत्रु होकर। प्रत्येक आन्दोलन को सशक्त बनाए रखने के लिए उसके विपक्ष में कुछ चुनौतियाँ भी होनी चाहिए। भारत में तकनीकी शिक्षा की समस्या धनाभाव के कारण नहीं है। धन तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु समाज में साधारण औद्योगिक विकास का अभाव है। शिक्षा और विकास का एक निश्चित अनुपात रहता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए बारी-बारी से किसी एक में वृद्धि करने से समाज की प्रगति सम्भव है। इसके अलावा इनका और सर्वसाधारण की सर्वोच्च वैज्ञानिक संशोधन की आवश्यकता का भी एक निश्चित अनुपात रहता है, उस पर भी दृष्टि बनाए रखनी होगी। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति संयुक्त सामाजिक शक्ति के द्वारा करनी होगी। सशक्त समाज स्वयं ही अपनी आवश्यकताओं, समस्याओं और अपने अवयवों की देखभाल करेगा। सामाजिक चेतना को पुनरुज्जीवित करना ही हमारी सर्वप्रथम समस्या है। हमें इसे जागृत करना होगा, अनुप्राणित करना होगा और उसे सदैव सजग रखना होगा। समाज की सर्वप्रथम और सर्वाधिक आवश्यकता है शिक्षा की, मस्तिष्क को सक्रिय करने की। इसके लिए ऊँच-नीच, सभी को यदि भूखों रहना पड़े, दास के समान कार्य करना पड़े अथवा पूर्णत: कंगाल भी होना पड़े, तो उसकी तैयारी होनी चाहिए। यह कार्य केवल अपनी सन्तानों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। सबके हित में प्रत्येक का हित होना चाहिए और प्रत्येक की आवश्यकता में सबकी रुचि होनी चाहिए। हमें अपनी संस्कृति को ऊर्जावान करना होगा। जगत की वस्तुओं के प्रति हमारे दृष्टिकोण में समग्रता लानी होगी और नए दृष्टिकोण को अपनाना होगा। विद्या के परिसीमित क्षुद्र अंश से सन्तुष्ट होने के बजाय मनुष्य-जाति के लिए सम्भव प्रत्येक ज्ञान को हमें प्राप्त करना होगा। क्या हम मानसिक रूप से वैज्ञानिक अनुसंधान, बुद्धि-कौशल, व्यापकता इत्यादि गुणों के लिए सक्षम हैं?

अन्तत: हमें कहाँ से अपने इस अज्ञान रूपी किले पर नया आक्रमण आरम्भ करना होगा? धार्मिक संगठनों के द्वारा हम साहसपूर्वक इस कार्य को आरम्भ करें। बौद्ध मतावलम्बी देशों में मठ-आश्रम को केन्द्र में रखकर विद्यालय, ग्रन्थालय, संग्रहालय तथा तकनीकी शिक्षा इत्यादि का संचालन किया जाता है। उच्च और आधुनिक शिक्षा के विकास हेतु हम भी क्यों न अपने देश के दक्षिण भाग में उसी प्रकार के मन्दिर की परियोजना बनाएँ। ब्राह्मण की प्रतिक्रिया और बहिष्कार से हम क्यों डरें? यदि हमें अपनी समझदारी पर सचमुच भरोसा है, तो क्या ब्राह्मण हमसे दूर रह पाएँगे? अपने देश और देशवासियों को हम विश्व के अन्य लोगों के समान उच्चतम और महानतम मानें। उनके प्रति हमारा इस प्रकार प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित हो। इस कार्य में हम यथार्थ हिन्दू बनना न भूलें। किन्तु यह आवश्यक है कि महान हिन्दू शब्द का उपयोग करने के पहले हम स्वयं परिश्रम से इसकी पात्रता अर्जित करें। क्या सचमुच अपने देश का इतना महान नाम धारण करने के लिए हमने परिश्रम किया है और क्या हम इसके अधिकारी हैं? क्या हमारे देश का नाम और हमारा धर्म हमारे लिए सर्वोच्च पुण्य, प्रेम-भक्ति का उपहार तथा सेवा का प्रेमचिह्न नहीं है? ○○○

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्वपि ।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ।।२६।।

पदच्छेद – *आत्मनः विक्रिया न अस्ति, बुद्धेः बोधः न जातु अपि, जीवः सर्व-मलम् ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टा इति मुह्यति ।*

अन्वयार्थ – **आत्मनः** आत्मा में **विक्रिया** क्रिया **न** नहीं **अस्ति** होती, **बुद्धेः** बुद्धि में **अपि** भी **जातु** कदापि **बोधः** चेतना **न** नहीं होती, (तथापि) **जीवः** जीव **सर्व-मलं** सभी (कतृत्वादि) मलों को (अपने में) **ज्ञात्वा** जानकर (स्वयं को) **कर्ता** कर्ता (एवं) **द्रष्टा** द्रष्टा **इति मुह्यति** मानकर भ्रमित हो जाता है । (कहीं-कहीं 'कर्ता' की जगह 'ज्ञाता' पाठान्तर दीख पड़ता है ।)

श्लोकार्थ – आत्मा में कोई क्रिया नहीं होती और बुद्धि में कोई चेतनता नहीं होती, परन्तु जीव (अज्ञान के कारण) सभी (कतृत्वादि) मलों को अपने में जानकर, आत्मा को कर्ता तथा द्रष्टा मानते हुए भ्रमित होता है ।

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् ।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्चेन्निर्भयो भवेत् ।।२७।।

पदच्छेद – *रज्जु-सर्पवत् आत्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् न अहं जीवः परात्मा इति ज्ञातः चेत् निर्भयः भवेत् ।*

अन्वयार्थ – **रज्जु-सर्पवत्** रस्सी को सर्प समझने के समान **आत्मानम्** आत्मा को **जीवम्** जीव **ज्ञात्वा** मानकर (व्यक्ति) **भयम्** भयभीत **वहेत्** होता है, (परन्तु) **अहम्** मैं **जीवः** जीव **न** नहीं, (अपितु) **परात्मा इति** परमात्मा (हूँ), **चेत्** यदि ऐसा **ज्ञातः** जान ले, तो **निर्भयः** निर्भय **भवेत्** हो जाता है ।

श्लोकार्थ - रस्सी को सर्प समझने के समान, आत्मा को जीव मानने से व्यक्ति भयभीत हो जाता है, (परन्तु) यदि वह जान ले कि मैं जीव नहीं, अपितु परमात्मा हूँ, तो वह सारे भयों से मुक्त हो जाता है ।

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाण्यपि ।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ।।२८।।

पदच्छेद – *आत्मा अवभासयति एको बुद्धि आदीनि इन्द्रियाणि अपि दीपः घटादिवत् स्व-आत्मा जडैः तैः न अवभास्यते ।*

अन्वयार्थ – **एको** एकमात्र **आत्मा** आत्मा (ही) **बुद्धि** बुद्धि **आदीनि** आदि को (तथा) **इन्द्रियाणि** इन्द्रियों को **अपि** भी **अवभासयति** प्रकाशित करती है, **दीपः** दीपक **घट-आदिवत्** घड़े आदि के समान, **तैः** उन (बुद्धि आदि) **जडैः** जड़-पदार्थों के द्वारा **स्व-आत्मा** अपनी आत्मा **न** **अवभास्यते** नहीं प्रकाशित हो सकती ।

श्लोकार्थ – जिस प्रकार एकमात्र दीपक ही घड़े आदि को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एकमात्र आत्मा ही बुद्धि आदि तथा इन्द्रियों को भी प्रकाशित करती है, (बुद्धि आदि) जड़-पदार्थ स्वयं को नहीं प्रकाशित कर सकते ।

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयाऽऽत्मनः ।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा
स्वात्मप्रकाशने ।।२९।।

पदच्छेद – *स्व-बोधे न अन्य-बोध-इच्छा बोधरूपतया आत्मनः न दीपस्य अन्य दीप-इच्छा यथा स्व-आत्म-प्रकाशने ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **दीपस्य** एक दीपक **स्व-आत्म-प्रकाशने** स्वयं को प्रकाशित करने के लिए **अन्य दीप-इच्छा** दूसरे दीपक की अपेक्षा **न** नहीं रखता, (वैसे ही) **बोधरूपतया** (स्वयं) ज्ञान-स्वरूप होने के कारण **आत्मनः** आत्मा को **स्व-बोधे** अपने बोध के लिये **न** **अन्य-बोध-इच्छा** किसी अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती ।

श्लोकार्थ – जैसे एक दीपक स्वयं को प्रकाशित करने के लिए किसी दूसरे दीपक की अपेक्षा नहीं रखता, वैसे ही स्वयं ज्ञानस्वरूप होने के कारण आत्मा को अपना स्वरूप जानने के लिये किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती ।

भारतीय चिन्तन की देव-दृष्टि : एक ऐतिहासिक पर्यालोचन

राजलक्ष्मी वर्मा
प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(गतांक से आगे)

यह समस्त सृष्टि इससे ही उत्पन्न होती है, इससे ही जीवित है, निरन्तर इसकी ही ओर अग्रसर है और अन्त में इसमें ही विलीन होती है – **'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति...' (तै . ३. ६)**। छान्दोग्योपनिषद् के शाण्डिल्यविद्या के प्रसंग में परमात्मा को 'सर्वकर्मा सर्वकाम: सर्वगन्ध: सर्वरस:' कहा गया है (छा. ३.१४.१) । इन सगुणपरक श्रुतियों को अर्थवाद या प्रशंसापरक मानकर अद्वैत मतानुयायियों ने इनका पर्यवसान ब्रह्म के निर्गुण निराकार रूप में किया है, किन्तु भारतीय संस्कृति के ईश्वरविषयक चिन्तन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रह्म का यह अमूर्त्त आनन्द मानवीय सीमाओं के आग्रह से धीरे-धीरे घनीभूत होता गया और अन्तत: असीम करुणा के वशीभूत होकर भक्तों के हृदय में आनन्दकन्द सगुण-साकार ईश्वर के रूप में प्रकट हो गया। पुराणों, विशेष रूप से श्रीमद्भागवत पुराण ने परमात्मा के इस निर्गुण-सगुण रूप की विशेष प्रतिष्ठा की। ईश्वर के इस सगुण-साकार रूप से मनुष्यता का जो कल्याण हुआ, वह अन्य किसी भी साधन से नहीं हो सका। ईश्वर के इस सगुण रूप की चर्चा करने के पूर्व भारत के ईश्वरविषयक चिन्तन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण दिशा पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। विश्व के अनेक धर्मों ने परमात्मा के साथ शब्द या नाद का सम्बन्ध जोड़ा है। इस्लाम और ईसाई धर्म ईश्वर को निराकार मानते हुए भी उसे सगुण स्वीकार करते हैं और उसकी दिव्य वाणी से ही सृष्टि और व्यवस्था की उत्पत्ति की बात कहते हैं। नाद या शब्द की रचनात्मक शक्ति अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुकी है। भारतवर्ष में विक्रम की द्वितीय शताब्दी में स्थित वैयाकरण दर्शन के पुरोधा आचार्य भर्तृहरि ने अपने विश्व-विश्रुत ग्रन्थ 'वाक्यपदीयम्' में परब्रह्म की अवधारणा नाद या शब्दरूप में ही की है। प्रणवरूप यह शब्दतत्त्व अनादि और अविनाशी है, चैतन्यरूप तथा अद्वय है, अव्यक्त और अक्रम है अर्थात् इसमें पूर्वापरविभाग या देशकालगत सीमाएँ नहीं हैं। इस अदृश्य शब्दब्रह्म से ही समस्त वाङ्मय जगत् (अकारादि वर्ण, पद, वाक्य आदि) तथा नामरूपात्मक चराचर सृष्टि की उत्पत्ति होती है। समस्त जगत् इस 'अक्षर तत्त्व' में ही स्थित है और प्रलयावस्था में इसमें ही लीन हो जाता है। हठयोगी सिद्धि प्राप्त करने पर सहस्रारचक्र में शब्दब्रह्मरूप इसी अनाहत (स्वत:उत्पन्न) नाद का साक्षात्कार करते हैं।

समस्त भारतीय चिन्तन दृश्यमान द्वैत या वैविध्य के आधाररूप में अभेदरूप किसी अद्वय चेतन सत्ता को स्वीकार करता है। शब्दब्रह्म की अवधारणा भी इसी प्रवृत्ति का प्रतिफलन है। भारतीय संस्कृति व्यंजनाप्रधान संस्कृति है, स्थूल और सुबोध प्रतीकों के द्वारा वह सूक्ष्म और रहस्यमय तत्त्व को व्यंजित करने की चेष्टा करती है, उसे बोधगम्य और आस्वाद्य बनाने की चेष्टा करती है। यही कारण है कि शब्दब्रह्म का शक्तिवैभव कृष्ण की 'मुरली' में साकार हो उठा, वह मुरली जो चराचर सृष्टि को वश करने वाली उनकी 'स्वरूपभूता' योगमाया है। शब्दाद्वैतवादियों की भाषा में कहें, तो ब्रह्म की 'प्रत्यवमर्शिनी शक्ति' है।

उपनिषदों का वह निर्गुण-निराकार ब्रह्म, जो मनुष्य के चिन्तन और उपासना का विषय बनते ही 'सगुण' हो जाता है, या यों कहें कि सगुण से ही मनुष्य की संवेदना उस तक पहुँच पाती है । उसे पुराणकारों ने मोहक व्यक्तित्व दिया । इन्द्रियों के जगत में जीने वाले, संसार के अपूर्ण ओछे विषयों में मन-प्राण की तृप्ति ढूँढ़ने वाले और स्वयं को सम्बन्धों से ही परिभाषित करने वाले सामान्य मानव के जीवन का वह सगुण आधार बन गया । ईश्वर के सगुण रूप को ही पुराणों में 'अवतारवाद' कहा जाता है । 'अवतरण' का अर्थ है नीचे उतरना; साधारण सांसारिक मानव के लिए अपनी सीमाबद्ध अहंकारनिष्ठ चेतना का अतिक्रमण कर परमात्मा की अवदात चैतन्यभूमि तक पहुँचना बहुत कठिन है। साधना की कितनी ही सीढ़ियाँ लगानी पड़ती हैं, पैरों में पड़ी आसक्ति की बेड़ियाँ बार-बार नीचे खींच लाती हैं, किन्तु परमात्मा ! उसका क्या उतरना और क्या चढ़ना ! वह तो सर्वत्र है, सर्वरूप है; संसार भी वही है, परमार्थ भी वही है। अपनी अपार करुणा का वरदान लेकर वह जगन्नियन्ता वासनाओं के कलुष में लिपटे,

आसक्तियों की मृगमरीचिका में भटकते और जन्म-मृत्यु की उत्ताल तरंगों में तिनकों की भाँति अवश बहते दीन-हीन मनुष्यों के बीच अमरता का वरदान लेकर उतरा, अपनी 'लीलामूर्ति' धारण कर 'नररूप' में। ईश्वर के इस इन्द्रियगम्य 'नररूप' में व्यक्ति भावना, संवेदना और अनुभूति के स्तर पर गहराई तक जुड़ सका। उसके जीवन-संघर्षों में उसे अपने संघर्ष की छाया दिखलायी दी; उसकी व्यथा में उसे अपनी ही किसी पीड़ा की प्रतिध्वनि सुनाई दी और उसकी विजय में उसे अपने ही पुरुषार्थ की सार्थकता प्रतीत हुई। इस नररूप परमात्मा के अमृतस्पर्श से उसका सारा दैन्य, उसका सारा कलुष मिट गया। जिस अतीन्द्रिय तत्त्व को वह अपनी बुद्धि से न जान पाया था, उसे उसने मन के नेत्रों से पहचान लिया।

ईश्वर के सगुण-साकार रूप को केन्द्र में रखकर भक्ति की जो धारा बही, उसने भारत की छिन्न-भिन्न होती सांस्कृतिक चेतना को नया जीवन, नई पहचान दी। धर्म के विधि-निषेधमय बाह्याचार और समाज में किसी रोग की भाँति व्याप्त जाति-वर्ग-भेद की उपेक्षा कर भक्ति ने - 'जातपाँत पूछे नहिं कोय, हरि को भजे सो हरि का होय'-का सिद्धान्त प्रतिपादित कर धर्म के अत्यन्त उदार और सर्वग्राह्य रूप की प्रस्तावना की। भगवान के सौन्दर्य पर रीझे दक्षिण के आलवार कवियों की प्रेमसिक्त काव्यधारा तथा मध्ययुग के वैष्णव आचार्यों की परब्रह्म के सगुण रूप के प्रतिपादन में अपूर्व तार्किक दक्षता ने भक्ति-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सामान्य जन को ज्ञानमार्ग और निष्काम कर्म की तुलना में भक्तिमार्ग अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ, क्योंकि यह मानव की प्रकृति के अधिक अनुकूल था। भक्ति ने मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का न तो दमन किया, न ही उनके अतिक्रमण की बात की; उसने केवल उनका केन्द्र बदल दिया। उन्हें अपूर्ण जगत की अपेक्षा परिपूर्ण परमात्मा से जोड़ दिया। इस प्रकार मनुष्य की लौकिक वृत्तियों का उदात्तीकरण हो गया और जो कुछ उसके बन्धन का कारण था वही उसकी मुक्ति का साधन बन गया। भक्ति का प्राणतत्त्व है प्रेम और प्रेम से उत्पन्न सहज विश्वास और समर्पण। इनके अतिरिक्त उसे किसी बाह्य आडम्बर या अभिचार की आवश्यकता नहीं है। प्रेम मनुष्य की सहज स्वाभाविक वृत्ति है, जो अनेक रूप धारण कर व्यक्त होती है; भक्ति ने इस रागात्मक वृत्ति को ही ईश्वर की प्राप्ति का माध्यम बनाया। व्यक्ति के सभी मनोभाव, अनुराग, आसक्ति, श्रृंगार, वात्सल्य, सख्य, समर्पण, मैत्री, यहाँ तक कि शत्रुता भी ईश्वर से जुड़कर परमतृप्ति और विश्रान्ति के उपाय हो गये। व्यावहारिक जीवन में निर्गुण-निराकार परमात्मा के इस सगुण रूप के महत्त्व और उपादेयता को अद्वैतप्रस्थानशिरोमणि शंकराचार्य भी स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं – 'स्वप्न-सिंह को मारने के लिए स्वप्न-खड्ग ही उपयोगी है, वास्तविक खड्ग नहीं।' शंकराचार्य, सन्त ज्ञानेश्वर, मधुसूदन सरस्वती और श्रीधराचार्य जैसे अद्वैतमतानुयायियों द्वारा रचित भावपूर्ण स्तुति-साहित्य ईश्वर के सगुण रूप के आकर्षण का साक्षी है। मायापति के स्वरूप में इतना आकर्षण है कि उसके आगे संसार के सभी आकर्षण फीके पड़ जाते हैं।

ईश्वर के सगुण रूप की कल्पना विविधरूपा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अनेक अन्य देवता परब्रह्म की विभिन्न प्रयोजनों से धारण की गयी अभिव्यक्तियाँ हैं। भारतीय संस्कृति ईश्वर का साक्षात्कार मातृशक्ति के रूप में भी करती है। यह मातृशक्ति अनेक रूपों में प्रकट होती है। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती, चण्डी, काली आदि इस मातृशक्ति की ही सौम्य और घोर प्रतिमाएँ हैं। परमात्मा की इन विविध अभिव्यक्तियों को आधार बनाकर प्रमुख रूप से तीन विचार-सरणियाँ निर्मित हुईं – वैष्णव, शैव और शाक्त। वैष्णव मत में परमसत्ता की अवधारणा महाविष्णु और उनके अवतारों के रूप में, शैवमत में भगवान शिव के रूप और शाक्त मत में आदिशक्ति पराम्बा के रूप में की गयी है। इन विचार-सरणियों के अपने-अपने दार्शनिक सिद्धान्त और साधनामार्ग भी प्रतिपादित किये गये। शक्ति, शिव और विष्णुरूप सगुण ईश्वर के अनेक अवतारों की चर्चा भी पुराणों में मिलती है। परात्पर ब्रह्म की ही सगुण संज्ञा है, 'महाविष्णु'। विष्णु का अर्थ है – सर्वव्यापक तत्त्व। महाविष्णु के दस प्रमुख अवतार स्वीकार किये गये हैं – मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। इनमें से प्रथम नौ अवतार क्रमशः हो चुके हैं और दसवाँ कल्कि अवतार भविष्य में यथासमय होगा। प्रत्येक अवतार किसी महत् प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये, किसी महान संकट की निवृत्ति के लिए या फिर धर्म की स्थापना के लिए हुआ है। ईश्वर का अवतार होने से ये सभी रूप पूजनीय हैं, किन्तु नृसिंह, राम और कृष्ण रूप के अवतार विशेष श्रद्धा और आस्था के केन्द्र बने। क्योंकि संवेदना के स्तर पर जन-मानस इनसे अधिक जुड़ सका। श्रीराम और श्रीकृष्ण तो भारतीय जनमानस के मानो निर्माता ही हैं। श्रीराम लोकनायक हैं और श्रीकृष्ण लोकरंजक हैं। इन दो महान व्यक्तित्वों की छत्रछाया में ही भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। रामकथा का प्रभाव तो समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की संस्कृति पर दिखलाई पड़ता है। **(क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (७)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

५. दिशा बदलें – यदि मन का स्वभाव ही ऐसा हो कि किसी से आसक्त होना बहुत अच्छा लगता हो, हृदय को किसी से प्रेम किये बिना नहीं रहा जाता हो, तो क्या करें? किस प्रकार आसक्ति से मुक्त हों? उसके लिये श्रीरामकृष्ण देव एक सरल मार्ग बताते हैं – "मोड़ फिरिये दाओ" अर्थात् दिशा बदल दो। आसक्ति का पात्र बदल डालो। हृदय को प्रेम करना अच्छा लगता है, तो ठीक है, उसे प्रेम करने दो, पर क्षणभंगुर पदार्थों या अल्पायु मनुष्य से नहीं, अमर परमात्मा से प्रेम करो। भगवान में आसक्ति रखो और जैसे-जैसे भगवान में आसक्ति बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे अन्य आसक्तियाँ अपने आप छूटती जाएँगी। महान भक्त धनुर्दास के साथ ऐसा ही हुआ था। उस समय श्रीरंगम् में बहुत बड़ा उत्सव था। असंख्य लोग आए थे। रामानुजाचार्य भी इस उत्सव में आए थे। प्रभु श्रीरंगम् की शोभायात्रा निकलने वाली थी। कावेरी नदी में स्नान करके रामानुजाचार्य प्रभु की शोभायात्रा देखने के लिये आए। वहाँ उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा। एक युवक एक युवती के रूप पर बहुत आसक्त था। वह युवती के ऊपर छत्र करके पीछे (उल्टा) चल रहा था, इससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने सेवक से उसे बुलाकर लाने को कहा। सेवक ने वापस आकर रामानुजाचार्य को कहा कि वह युवक कहता है कि "मैं नहीं आऊँगा, मैं अपनी प्रेयसी को देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ।" यह सुनकर रामानुजाचार्य हँसे। उन्होंने दूसरे दिन सेवक से कहा, "तू उसे समझाकर प्रेमपूर्वक यहाँ ले आ।" अन्त में वह आया, तब रामानुजाचार्य ने उससे पूछा, "तू क्या कर रहा है, इसका तुझे पता है?"

उसने कहा, "हाँ, मैं अपने प्रियतमा से प्रेम कर रहा हूँ, उसे देखे बिना मैं एक क्षण भी रह नहीं सकता हूँ।"

रामानुजाचार्य ने पूछा, "बहुत अच्छा, पर तू मुझे बता कि उस युवती में तुझे क्या अच्छा लगा कि तू उसे देखे बिना नहीं रह सकता है?"

युवक ने उत्तर दिया, "महाराज, उसके नेत्र अति सुन्दर हैं, उसकी जादूभरी मोहक आँखों में असीम आकर्षण है। उन नेत्रों के देखे बिना मैं रह नहीं सकता हूँ।"

"अरे, मैं तुझे उनसे भी अधिक सुन्दर नेत्र बताऊँ तो?" रामानुजाचार्य ने कहा।

युवक ने कहा, "उससे अधिक सुन्दर नेत्र किसी के हो ही नहीं सकते हैं।"

उन्होंने उससे कहा, "मेरे साथ चलो।" वे उसे भगवान श्रीरंगम् के मन्दिर में ले गये। आरती का समय था, अंधेरा हो गया था। मन्दिर के गर्भगृह में दीपक प्रज्वलित था। उस दीप के प्रकाश में उसने भगवान श्रीरंगम् के नेत्रों को देखा। 'अहा ! अहा ! ऐसे अद्भुत नेत्र !' कहकर वह उन अद्भुत नेत्रों को देखता ही रहा। आरती पूरी हो गई, तब भी वह उन नेत्रों से आकर्षित होकर वहाँ खड़ा ही रहा। जैसे-तैसे उसे घर ले गये, पर उन नेत्रों का ऐसा अदम्य आकर्षण उसके हृदय में जाग्रत हुआ कि दूसरे दिन सवेरे-सवेरे वह मन्दिर में पहुँच गया। वहाँ खड़ा-खड़ा वह उन सुन्दर नेत्रों को देखता ही रहा। वह उस प्रेयसी को भूल गया, उसका आकर्षण छूट गया। उसकी प्रेयसी हेमाम्बा उसे ढूँढ़ती हुई मन्दिर में आ पहुँची। उसने उसे वापस ले जाने के अनेक प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ हुये। उलटा उसने हेमाम्बा से कहा, "अरे, इन सुन्दर नेत्रों को तू भी देख, तुझे भी इन नेत्रों से अलौकिक प्रेम मिलेगा।" वह वापस नहीं गया। हेमाम्बा का दास अब श्रीरंगम् का दास बन गया। बाद में तो वह श्रीरामानुजाचार्य का प्रिय शिष्य धनुर्दास बन गया। इस प्रकार केवल आसक्ति का पात्र बदलने से समग्र जीवन बदल जाता है।

श्रीरामकृष्ण देव को उनके अन्तरंग शिष्य हरिप्रसन्न ने एक दिन पूछा, "ठाकुर, मन से वासना किस प्रकार जा सकती है?"

श्रीरामकृष्ण देव ने वासना से मुक्त होने का सरलतम उपाय बता दिया – "अरे, पूर्व की ओर चलना शुरू करो,

पश्चिम अपने आप छूट जायेगा।'' उन्होंने समझाया कि वासनाओं के विषय में विचार करते रहना या उनसे लड़ते-झगड़ते रहना, यह तो उन पर ध्यान करने जैसे हो जायेगा। इससे अच्छा है कि भगवान के मार्ग पर चलना शुरू कर दो, तो वासनाएँ अपने आप छूट जाएँगी।

रामचरितमानस के रचयिता महान संत तुलसीदास के जीवन में भी ऐसी घटना हुई थी। युवक तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली से इतने अधिक आसक्त थे कि पत्नी को एक दिन भी मायके नहीं जाने देते थे। एक दिन जब वे कहीं बाहर गये हुए थे, तभी रत्नावली का छोटा भाई उन्हें लेने आ गया और बोला, ''माँ बीमार है, तुम्हें बुला रही है।'' यह सुनकर रत्नावली ने एक पत्र लिखकर रखा और भाई के साथ मायके चली गई। तुलसीदास जब घर आए, तो रत्नावली को न देखकर व्याकुल हो गये, पत्र पढ़ा। उनसे रहा नहीं गया और ससुराल चल दिये। रास्ते में नदी पड़ती थी। वे बहुत परिश्रम से नदी पार कर मध्यरात्रि को ससुराल पहुँच गये। कितनी देर तक दरवाजा खटखटाया, पर किसी ने नहीं खोला। अन्त में रत्नावली ने आवाज को पहचानकर दरवाजा खोला। पति को खड़ा देखकर वह बहुत लज्जित हुई और उसने उलाहना देते हुए कहा –

लाज ना लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहाँ कहौं मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह में तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम में, होत न तव भवभीति।।

यह वाक्य तुलसीदास के हृदय में सीधे उतर गया। उनका मर्मस्थल बींध गया। उसी क्षण उनके हृदय में श्रीराम के प्रति प्रेम जाग गया। तत्क्षण वे श्रीराम को प्राप्त करने निकल पड़े। फिर उनको लौटाने के लिये रत्नावली ने रो-रोकर विनती की, पर सफल नहीं हुई। उनके प्रेम का, उनकी आसक्ति का केन्द्र बदल गया था। स्त्री के स्थान पर परब्रह्म स्वरूप श्रीराम आ गये थे। संसार को महान कवि, संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास मिल गये, जिनके रामचरितमानस ने असंख्य लोगों के जीवन को प्रभु की ओर मोड़ने का महान कार्य किया। इसलिये कह सकते हैं कि जितनी अधिक उत्कट आसक्ति होगी, फिर भले वह व्यक्ति हो या वस्तु हो, तो उतने ही महान संत होने की सम्भावना अधिक होती है, केवल दिशा बदलने की आवश्यकता है। भगवान के प्रति दिशा पकड़ने से तो मनुष्य स्वयं समूल बदल जाता है, उसकी सभी आसक्तियाँ छूट जाती हैं। रामकृष्ण मठ-मिशन के छठवें परमाध्यक्ष स्वामी विरजानन्दजी महाराज अपनी पुस्तक 'परमार्थ प्रसंग' में लिखते हैं, ''प्रेमासक्त युवक-युवती के समान भक्त भी भगवान को छोड़कर नहीं रह सकता है। युवक-युवती का प्रेम अपने सुख और स्वार्थ की गन्ध से भरा हुआ रूप और गुण पर आधारित होता है। थोड़ी-सी भी इधर-उधर गये या रहन-सहन का मेल नहीं हुआ, तो प्रेम लम्बे समय तक नहीं टिकता है, वह कड़वाहट छोड़ जाता है। लेकिन ईश्वरीय प्रेम सर्वथा निष्काम, अपार्थिव, असीमित अनन्त होता है। यह प्रेमसुधा जितनी पी जाय, प्यास उतनी ही बढ़ती जाती है। कभी आशा समाप्त नहीं होती है। प्रेम, प्रेमपात्र और प्रेमी का भेद मिट जाता है, जब वे एकाकार हो जाते हैं, तब एकमात्र आनन्द ही रह जाता है।'' इस तरह भगवान से प्रेम करने से भगवान स्वयं मिल जाते हैं और जहाँ भगवान उपस्थित हों, वहाँ दुख या अशान्ति कैसे होगी? संसार में जलकमलवत् रहकर, सुख-दुख से परे होकर या भगवान में सम्पूर्ण आसक्त होकर सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। ○○○

पृष्ठ १३२ का शेष भाग

महाराज ने भक्तों को वह पोटली खोलने के लिए कहा। पोटली में पुराने मुड़े हुए नोट और कुछ सिक्के थे। वृद्धा ने बताया कि यह उसकी चौदह-पन्द्रह वर्ष की भिक्षा है, जिसका अग्रभाग वह प्रतिदिन ठाकुर के सामने रखती थीं। महाराज पैसे लेना नहीं चाहते थे, किन्तु वृद्धा ने महाराज से बहुत विनती की कि वे इसे मन्दिर के कार्य के लिए खर्च करें। वृद्धा को रसीद देने के लिए पैसों को गिना गया तो कुल रकम ११२२३ रुपए और कुछ छुट्टे पैसे थे।

महाराज यह देखकर इतने विह्वल हो गए कि उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। धन्य है, हमारा यह देश जहाँ धर्म के लिए एक अति निर्धन व्यक्ति भी अपना सब कुछ न्यौछावर कर सकता है। धर्म ही भारत का प्राण है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धैर्य, दया, शुद्धता आदि सद्-वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है। ○○○

श्रीरामकृष्ण की विनोद लीला

अवधेश प्रधान

प्रो. हिन्दी विभाग,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

श्रीरामकृष्ण का प्रशंसा करने का अपना ढंग था। उनकी प्रशंसा में गहरा अर्थ भरा रहता था। उन्होंने बातों के क्रम में विद्यासागर की दयालुता की प्रशंसा की और कहा – तुम सिद्ध हो ! विद्यासागर ने पूछा – महाराज, यह कैसे? श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा – आलू-परवल सिद्ध होने से (पक जाने से) नरम हो जाते हैं, इसलिए तुम भी बहुत नरम हो ! तुम्हारी ऐसी दया ! (हास्य) विद्यासागर ने हँसते हुए कहा – पीसा उरद तो पकने पर कड़ा हो जाता है। (सब हँसे)। अब श्रीरामकृष्ण की वाणी में विनोद के साथ-साथ गुरुभाव उतर आया। उन्होंने कहा –''तुम वैसे क्यों होने लगे? खाली पंडित कैसे हैं? मानो एक पके फल का अंश जो अन्त तक कठिन ही रह जाता है। वे न इधर के हैं, न उधर के। गीध खूब ऊँचा उड़ता है, पर उसकी नजर हाड़-मांस पर ही रहती है। जो खाली पंडित हैं, वे सुनने के ही हैं, पर उनकी कामिनी-कांचन पर आसक्ति होती है, गीध की तरह सड़ी लाशें ढूँढ़ते हैं। आसक्ति का घर अविद्या के संसार में है। दया, भक्ति, वैराग्य, ये विद्या के ऐश्वर्य हैं।''

इसी गुरुभाव में उन्होंने निर्गुण और सगुण का भेद अपनी खास दृष्टान्त शैली में समझाते हुए कहा – ''विज्ञानी देखता है कि जो ब्रह्म है, वही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान है। ये जीव और जगत, मन और बुद्धि, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान सब उसके ऐश्वर्य हैं। (सहास्य) जिस बाबू के घर-द्वार नहीं हैं, या बिक गया, वह बाबू कैसा? (सब हँसे) ईश्वर षडैश्वर्यपूर्ण हैं। यदि उसे ऐश्वर्य न होता, तो कौन उसकी परवाह करता?'' (सब हँसे)। (वही, पृ. ४४)

फिर बताया कि साधारण जीवों का अहं नहीं जाता है। जैसे पीपल का पेड़ काट डालो, फिर उसके दूसरे दिन अंकुर निकल आता है। बैल 'हम्बा हम्बा' (हम-हम) करता है, फिर ढेर सारी यातना के बाद उसकी मृत देह के चमड़े से ढोल बनता है, तब खूब पिटता है। ब्रह्म दर्शन होने के बाद विचार बन्द हो जाता है, आदमी चुप हो जाता है। लोक शिक्षण के लिये उस अवस्था से नीचे उतरता है, फिर बोलता है। ठाकुर ने इसका ठेठ उदाहरण दिया – ''तालाब में घड़ा भरते समय भक् भक् आवाज होती है। घड़ा भर जाने के बाद आवाज नहीं होती। (सब हँसे) यदि एक घड़े से पानी दूसरे घड़े में डाला जाय, तो फिर शब्द होता है। (हास्य) जितनी ही भगवान पर भक्ति-प्रीति होगी, उतना ही कर्म घटता जाएगा, जैसे गृहस्थ की बहू गर्भिणी होती है, तो उसकी सास उसका काम कम कर देती है और नौ महीने पूरे होने पर बिलकुल काम छूने नहीं देती, आदि-आदि।

चलते-चलते श्रीरामकृष्ण ने विनम्रतापूर्वक हँसते हुए कहा, यह सब जो कहा, वह तो ऐसे ही कहा। आप सब जानते हैं, किन्तु अभी आपको इसकी खबर नहीं। (सब हँसे) वरुण के भंडार में कितने ही रत्न पड़े हैं, परन्तु वरुण महाराज को कोई खबर नहीं। विद्यासागर (हँसते हुए) - यह आप कह सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य) – हाँ जी, अनेक बाबू नौकरों के नाम तक नहीं जानते। (सब हँसते हैं)।

अपने ऐसे दुर्लभ उदाहरणों के द्वारा कई बार श्रीरामकृष्ण ने विद्यासागर को निरुत्तर कर दिया। जब श्रीरामकृष्ण ने बताया कि विभु के रूप में एक ही परमात्मा सबमें व्याप्त है, लेकिन शक्ति-भेद है, किसी में शक्ति अधिक है, किसी में कम, तो विद्यासागर ने पूछा – ''क्या ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति दी है और किसी को कम?'' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया – ''वह विभु के रूप में सब प्राणियों में हैं - चींटियों तक में है। पर शक्ति का तारतम्य होता है; नहीं तो क्यों कोई दस आदमियों को हरा देता है, और कोई एक ही आदमी से भागता है? और ऐसा न हो तो, भला तुम्हें ही सब कोई क्यों मानते हैं? क्या तुम्हारे दो सींग निकले हैं? (हास्य) औरों की अपेक्षा तुममें अधिक दया है, विद्या है, इसीलिए तुमको लोग मानते हैं और देखने आते हैं। क्या

तुम यह बात नहीं मानते हो?'' (वही, पृ० ४४)

विद्यासागर को भी अनुमान न रहा होगा कि शक्ति का तारतम्य सिद्ध करने के लिये ठाकुर सहसा उन्हीं का उदाहरण दे बैठेंगे - ''क्या तुम्हारे दो सींग निकले हैं?'' दोनों के बीच वाक्पटुता की एक मीठी टक्कर चलते-चलते भी हो गई। श्रीरामकृष्ण ने विद्यासागर को दक्षिणेश्वर आने को कहा। विद्यासागर – जरूर जाऊँगा। आप आए और मैं न जाऊँगा?

श्रीरामकृष्ण – मेरे पास? राम राम !

विद्यासागर – यह क्या? ऐसी बात आपने क्यों कही? मुझे समझाइए।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य) – हम लोग छोटी-छोटी नावें, जो खाई, नाले और बड़ी नदियों में भी जा सकती हैं, परन्तु आप हैं, जहाज; कौन जानता है, जाते समय रेत में लग जाय। (सब हँसते हैं)

विद्यासागर प्रफुल्लमुख किन्तु चुपचाप बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण – पर हाँ, इस समय जहाज भी जा सकता है।

विद्यासागर (हँसते हुए) – हाँ, ठीक है, यह वर्षा ऋतु है। (सब हँसे)

मास्टर (स्वगत) – नवानुराग की वर्षा; नवानुराग जब होता है, तब मान-अपमान क्या रह सकता है? (वही, पृ. ५०)

आध्यात्मिक चर्चा के क्रम में श्रीरामकृष्ण ऐसे सांसारिक उदाहरण देते हैं कि लोगों को बरबस हँसी आ जाती है। कथ्य जितना ही सूक्ष्म, उदात्त, अगम्य या दुर्गम, विशेष, अलौकिक होता है, उदाहरण उतना ही ठोस, ठेठ, सुगम, सामान्य, दैनिक अनुभव में आने वाला। कथ्य और उदाहरण के बीच के विरोध का चमत्कार सुनने वाले के मन में सहज ही आनन्द की हिलोर पैदा कर देता है।

२६ अक्टूबर १८८२ को शरत् पूर्णिमा की रात में केशवचन्द्र सेन ने श्रीरामकृष्ण को जल-विहार के लिये अपने जहाज या बजरे पर आमंत्रित किया था। उनसे चर्चा के क्रम में ठाकुर ने कहा, ''जब संसार का नाश होता है, महाप्रलय होता है, तब माँ सृष्टि के बीज इकट्ठे कर लेती हैं।'' इसके तुरन्त बाद उदाहरण दिया, ''जैसे गृहिणी के पास एक हंडी रहती है, उसमें विभिन्न प्रकार की चीजें रखी रहती हैं।'' स्वभावत: केशवचंद्र सेन के साथ-साथ सब लोग हँसने लगे। (वही, पृ. ८४)

श्रीरामकृष्ण एक बात बराबर कहते थे कि लोक शिक्षा के लिये ईश्वर का आदेश होना चाहिये, तभी लोगों पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसके लिये बिलकुल ग्रामीण उदाहरण उन्होंने अपने जन्मग्राम कामारपुकुर से ही उठा लिया । हालदारपुकुर के किनारे लोग रोज शौच करने जाते थे। चिल्लाने, कोसने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। तब लोगों ने कंपनी वालों को यह बात बताई। कंपनी वालों ने एक चपरासी को भेजा। उसने वहाँ एक कागज चिपका दिया – 'यहाँ शौच न करें।' तब सब बंद हो गया। (सब हँसते हैं।) (वही, पृ. ९१)

भक्तों को देखकर भक्तों को आनंद होता है। कैसा आनंद? ठाकुर ने उदाहरण दिया, जैसे गँजेड़ी को देखकर गँजेड़ी खुश हो जाता है; कभी-कभी तो उसे गले ही लगा लेता है ! यह उदाहरण सुनकर शिवनाथ शास्त्री और अन्य लोग हँसने लगे। (वही, पृ. ९७)

प्रार्थना करने से सभी जीवों का परमात्मा के साथ योग हो जाता है। इसे समझाने के लिये ठाकुर ने ठीक कलकत्ता शहर का उदाहरण दिया, ''गैस का नल सभी घरों में लगाया हुआ है और गैस गैस-कंपनी के यहाँ मिलती है। अर्जी भेजो, गैस का बन्दोबस्त हो जाएगा, घर में गैसबत्ती जल जाएगी। सियालदह में ऑफिस है।'' सब हँसते हैं। वही, पृ. १८०)। OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ –

१. (श्रीमाँ सारदा देवी की अमृतवाणी, पृष्ठ-९३) **२**. (वही, पृ. ९४) **३**. (स्वामी विज्ञानानन्द, जीवन और संदेश, पृ. ३७) **४**. (वचनामृत, पृ. ११७९) **५**. (वही, पृ. ११८१) **६**. वही, पृ. १२ **७**. वही, पृ. १२ **८**. (वही, पृ. १९) **९**. (वही, पृ. २०) **१०**. (वही, पृ. २१) **११**. (वही, पृ. ३९)

रामकृष्ण मिशन संचालन समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट – वर्ष २०१५-१६

रामकृष्ण मिशन की १०७वीं वार्षिक साधारण सभा रविवार, १८ दिसम्बर २०१६ को ३.३० बजे बेलूड़ मठ में आयोजित की गयी।

पश्चिम बंगाल सरकार ने समाज की प्रगति में रामकृष्ण मिशन की भूमिका को स्वीकार करते हुए इसे २०१५ के **बंग विभूषण पुरस्कार** हेतु चयन किया। स्वामी विवेकानन्द की १५०वीं जयन्ती के अवसर पर रामकृष्ण मिशन प्रधान कार्यालय द्वारा प्रायोजित स्वामीजी के बचपन पर आधारित एनीमेशन फिल्म 'Sound of Joy' को ६२ राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों को जूरी द्वारा **सर्वश्रेष्ठ एनिमेशन** फिल्म घोषित किया गया।

स्वामी सारादानन्द, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द और भगिनी निवेदिता के १५०वीं जन्म-जयन्ती समारोह विभिन्न केन्द्रों पर आयोजित किये गये।

आन्ध्र प्रदेश में तिरुपति, पश्चिम बंगाल में **गुडाप,** मणिपुर में **इम्फाल,** एवं **त्रिपुरा** के कैलाशहर में रामकृष्ण मिशन के नए केन्द्र आरम्भ किए गए। **बामनमुड़ा** और **मेखलागंज** उप-केन्द्र रामकृष्ण मठ के पूर्ण केन्द्र बनाए गए। मुख्यालय द्वारा परिचालित लालगढ़ आश्रम को रामकृष्ण मठ का केन्द्र बनाया गया। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की एक नई संयुक्त शाखा बांग्लादेश के रंगपुर में शुरू की गई।

शिक्षा–क्षेत्र में की गई विशेष सेवाएँ – १. **कोयम्बटूर मिशन** द्वारा स्नातक के तीसरे वर्ष के छात्रों के लिए प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) के अन्तर्गत तीन अल्पकालिक एड-ऑन कोर्स : स्नातक में वोकेशनल डिग्री : और एक मासिक ऑनलाईन पत्रिका IJAPEY' (International Journal of Adapted Physical Education and Yoga) का शुभारम्भ, २. कलकत्ता विश्वविद्यालय ने नरेन्द्रपुर केन्द्र को एम. फिल./पी.एच.डी. पाठयक्रम संचालित करने के लिए विवेकानन्द अनुसंधान केन्द्र शुरू करने की अनुमति दी। ३. रहड़ा केन्द्र के विवेकानन्द शताब्दी कॉलेज में Swami Vivekananda Centre for Multidisciplinary Research in Basic Science & Social Sciences का शुभारम्भ ४. राँची, मोराबादी केन्द्र में राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान (एन.आई.ओ.एस) से सम्बद्ध माध्यमिक और उच्च माध्यमिक पाठ्यक्रम की शुरुआत।

चिकित्सा–क्षेत्र में की गई विशेष सेवाएँ – १. **अगरतला केन्द्र** ने नगर निगम की मलिन बस्तियों में NUHM के तहत मोबाइल चिकित्सा आउटरीच शिविर आयोजित किया। २. **लखनऊ अस्पताल** में टेलीमेडिसिन की सुविधा शुरू हुई। ३. **सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता** ने छह मंजिला Dignostic and Cardiac केयर सेन्टर की शुरुआत की जिसमें कैथीटेराइजेशन प्रयोगशाला,सीसीयू, HDU, CTVS-ITU हैं। यहाँ इमरजेंसी ट्रामा केयर की लाइफसपोर्ट कोर्स की भी शुरुआत की गयी।

ग्रामीण विकास-क्षेत्र में की गई विशेष सेवाएँ – १. **नारायणपुर केन्द्र** ने १० आंगनबाड़ी को एक-शिक्षक **पूर्व बुनियादी विद्यालय** (एकल विद्यालय) में परिवर्तित किया। २. **नरेन्द्रपुर केन्द्र** ने पुरुलिया जिले के संतूरी गाँव में एक ग्रीन कॉ-लेज की शुरूआत की, जिसमें विभिन्न हरित मुद्दों से सम्बन्धित १२ पाठ्यक्रम हैं। ३. **पुरुलिया विद्यापीठ** ने ८ गाँवों में ११ ट्यूबवेल लगाये, और ६ कृषि शिविरों का आयोजन किया। ४. **राँची, मोराबादी केन्द्र** ने ७ रिचार्ज टैंक, २७ परकोलेशन टैंक, १ गुरुत्वाकर्षण सिंचाई प्रणाली और मृदा एवं जल संरक्षण तथा सिंचाई के लिये २ बोरा-बाँध का निर्माण किया। ५. **सारगाछी केन्द्र** ने उच्च मूल्य फसलों के बीच उत्पादन एवं प्रदर्शन के लिए एक ग्रीनहाउस तथा बीज नेट आगार का निर्माण किया। ६. **सिलचर केन्द्र** ने कछार जिले के मैनागढ़ ग्राम में नारियों हेतु सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र शुरु किया।

स्वच्छ भारत अभियान (भारत सरकार कार्यक्रम) के अन्तर्गत **१**. चेन्नई स्टूडेंट्स होम के पॉलिटेक्निक केन्द्र ने सड़क और सार्वजनिक स्थानों पर पाँच सफाई कार्यक्रम आयोजित किए **२**. मंगलूर केन्द्र ने १ फरवरी २०१५ को सफाई कार्यक्रम का शुभारम्भ कर पहले चरण में शहर के ४० विभिन्न स्थानों में ४० अभियान चलाए **३**. यूनिसेफ के सहयोग से नरेन्द्रपुर केन्द्र के लोकशिक्षा परिषद ने एक WASH (पानी, सफ़ाई और स्वच्छता) कार्यक्रम का शुभारम्भ पुरुलिया में किया।

रामकृष्ण मठ के अन्तर्गत की गई विशेष सेवायें – **१**. **बागबाजार मठ** ने प्राणकृष्ण मुखर्जी लेन में एक नवनिर्मित व्यावसायिक प्रशिक्षण-सह-उत्पादन केन्द्र का शुभारम्भ किया।

२. भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर एक होलोग्राफिक फिल्म **चेन्नई मठ** के विवेकानन्दर इल्लम (विवेकान्द हाउस) ने जारी किया। **३. घाटशिला मठ** ने डिस्पेन्सरी भवन बनाया। **४. गौहाटी मठ** ने एक डिस्पेन्सरी भवन बनाया। **५. तिरुवनंतपुरम्** केन्द्र ने अस्पताल भवन का जीर्णोद्धार किया तथा आयुर्वेद चिकित्सा की पंचकर्म और कलारी पद्धति की सेवा आरम्भ की। ६ **आँटपुर, बागबाजार** और **नागपुर** केन्द्रों ने विभिन्न कार्यक्रम द्वारा स्वच्छ भारत अभियान (भारत सरकार कार्यक्रम) को आगे बढ़ाया।

विदेश के केन्द्रों द्वारा की गई सेवायें – १. **बांग्लादेश** में रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव प्रसार संसद शुरू हुई। **ढाका** केन्द्र का उच्च विद्यालय शताब्दी समापन समारोह सम्पन्न हुआ। २. **सिंगापुर केन्द्र** के सारदा किंडरगार्टन को राष्ट्रीय पुस्तकालय बोर्ड, संचार मंत्रालय और सूचना सिंगापुर ने रीडिंग इनोवेशन अवार्ड प्रदान किया। ३. प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने **मलेशिया** केन्द्र में स्वामी विवेकानन्द की कास्य प्रतिमा का अनावरण किया।

इस वर्ष मिशन ने **सेवाकार्य** के अन्तर्गत कुल २२.७० लाख गरीब छात्रों, वृद्ध, बेसहारा एवं बीमार लोगों की १६.८५ करोड़ रुपये आर्थिक सहायता की।

१० अस्पतालों, ७७ औषधालयों, ४२ मोबाइल चिकित्सा इकाइयों और ९१० चिकित्सा शिविरों के माध्यम से ६१.०२ लाख लोगों को **चिकित्सा सेवा** प्रदान की गई, जिसमें १९१.४८ करोड़ रुपये व्यय हुए।

शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर प्राथमिक विद्यालय, गैर औपचारिक शिक्षा केन्द्रों, नैश विद्यालय, कोचिंग कक्षा आदि शिक्षण संस्थानों में लगभग ३.१२ लाख छात्र थे, जिन पर २८४.९६ करोड़ रुपये खर्च हुए। **ग्रामीण और आदिवासी विकास परियोजनाओं** में ५८.६६ करोड़ व्यय हुए, जिससे ८६.५१ लाख लोग लाभान्वित हुए। मिशन और मठ ने देश के विभिन्न भागों में कई राहत और पुनर्वास कार्यक्रम चलाकर ३६.७८ करोड़ व्यय किए और २.२१ लाख परिवारों के ७.२८ लाख लोगों की सहायता की।

आज इस अवसर पर हम मिशन के सदस्यों और मित्रों के प्रति हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करते हैं।

(स्वामी सुहितानन्द)

महासचिव

१८ दिसम्बर, २०१६

OOO

पुस्तक समीक्षा

'स्वामी विवेकानन्द का हिमालय भ्रमण'

लेखक - स्वामी विदेहात्मानन्द

प्रकाशक – स्वामी तत्त्वविदानन्द, अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, मायावती, चम्पावत, उत्तराखण्ड, हिमालय

पृष्ठ –२४८, मूल्य – ९०/-

भारतीय वाङ्मय में साहित्य की अभिव्यक्ति का यात्रा-वृत्तान्त विधा एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। साहित्य की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम जैसे कथा, कहानी, उपन्यास, डायरी, रिपोर्ताज आदि बड़े रोचक और शिक्षाप्रद होते हैं, वैसे ही यात्रावृत्तान्त भी रोचक और सहज शिक्षाप्रदायक होते हैं। उसमें भी यदि स्वामी विवेकानन्द जैसे महान पुरुष के यात्रा-वृत्तान्त प्राप्त हों, तो फिर क्या कहना! ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द की यात्राएँ विशेष महत्व रखती हैं।

रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'विवेक ज्योति' के दीर्घकाल तक रहने वाले अभूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी महाराज से 'विवेक ज्योति' के पाठक पूर्णत: परिचित हैं। उन्होंने अपने गहन शोध और कठिन परिश्रम से 'स्वामी विवेकानन्द का हिमालय-भ्रमण' नामक पुस्तक का प्रणयन किया है। यह पुस्तक स्वामी विवेकानन्द की तत्कालीन मनोदशा, उनकी योजनाओं में हिमालय का योगदान और उनके व्यक्तित्व के आध्यत्मिक तथ्यों पर प्रकाश डालती है। इसके साथ ही हिमालयीय संस्कृति से परिचय कराती है।

यह पुस्तक चारों भागों में विभक्त है – १. साधना यात्रा २. अध्ययन यात्रा ३. प्रचार यात्रा ४. जागरण यात्रा। यह पुस्तक एक ओर उनके जीवन के आध्यात्मिक प्रसंगों, आध्यात्मिक अनुभूतियों और दर्शनों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करती है, तो दूसरी ओर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों से परिचित कराती है। इस दृष्टि से इस पुस्तक की महत्ता सिद्ध होती है। पूर्वपीठिका में उनकी यात्रा के पूर्वापर सम्बन्धों और हिमालय-यात्रा की जिज्ञासा के कारणों का भी उल्लेख है। आशा करता हूँ, यह पुस्तक सबको आह्लादित करेगी और पढ़ते समय हिमालयीय स्निग्धता और पावनता की अनुभूति करायेगी। OOO